अध्याय-1

तुगलक वंश

नोट

संरचना (Structure)

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 गयासुद्दीन तुगलक (1320-1325)
1.2 मुहम्मद तुगलक
1.5 फिरोज तुगलक (1351-1388)
1.6 सारांश
1.7 शब्दकोश
1.8 अभ्यास-प्रश्न
1.9 संदर्भ पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे–

- गयासुद्दीन तुगलक जीवन और उत्कर्ष से संबंधित जानकारी हेतु;
- मुहम्मद तुगलग के शासन-प्रबंध को स्पष्ट रूप से समझने में;
- फिरोज तुगलक के प्रारंभिक जीवन तथा उसके शासन-प्रबंध को समझने हेतु।

1.2 प्रस्तावना

तुगलक वंश का संस्थापक गयासुद्दीन तुगलक था वह गाजी तुगलक के नाम से भी जाना जाता है। गाजी तुगलक एक साधारण परिवार का पुरुष था। उसकी माता पंजाब की एक जाट महिला थी और पिता बलबन का तुर्की दास था। वह 8 सितंबर, 1320 ई. को गद्दी पर बैठा। दिल्ली का पद प्रथम सुल्तान था जिसने 'गाजी या काफिरों का घातक' की उपाधि ग्रहण की।

राजकुमार जूना खाँ गयासुद्दीन तुगलक का ज्येष्ठ पुत्र था। उसका पालन-पोषण एक सैनिक की भाँति हुआ था और उसने उसी में अपने को प्रसिद्ध कर लिया।

नोट

एडवर्ड टामस ने मुहम्मद तुगलक को धनवानों का राजकुमार बताया है। वे बताते हैं कि उसके शासनकाल का प्रथम कार्य यह था कि मुद्रा ढलाई को नया रूप दिया गया। मुहम्मद तुगलक एक योग्य व्यक्ति था और उसने सब विषयों में उलेमाओं के आदेश स्वीकार करने से इंकार कर दिया। मुहम्मद तुगलक के उपरांत फिरोज तुगलक गद्दी पर बैठा। उसका जन्म 1309 ई. में हुआ व उसकी मृत्यु 1388 ई. में हुई। वह गयासुद्दीन तुगलक के छोटे भाई रजब का पुत्र था। उसकी माता भक्ती राजपूत कन्या थी।

1.3 गयासुद्दीन तुगलक (1320-1325)

गयासुद्दीन तुगलक (Ghiyas-Ud-Din Tughluq) या गाजी मलिक (Ghazi Malik) तुगलक वंश का संस्थापक था। यह वंश करौना तुर्क के वंश के नाम से भी प्रसिद्ध है क्योंकि गयासुद्दीन तुगलक का पिता करौना तुर्क था। इब्नबतूता हमें बताता है कि उसने शेख रुक्नुद्दीन मुल्तानी (Sheikh Rukn-Ud-Din Multani) से यह सुना था कि सुल्तान तुगलक उन करौना तुर्कों की नस्ल में से था जो सिंध व तुर्किस्तान के बीच पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करते थे। करौना तुर्कों के विषय में बताते हुए मार्को पोलो (Marco Polo) हमें यह सूचित करता है कि उन्हें यह नाम इसलिए दिया गया था क्योंकि वे भारतीय माताओं व तारतार पिताओं के पुत्र थे। इलियाज (Nay Elias), मिर्जा हैदर की तारीख-ए-रशीदी के अनुवादक ने करौना, लोगों की उत्पत्ति के विषय में जाँच की और यह निष्कर्ष निकाला कि करौना मध्य एशिया के मंगोलों में से थे और उन्होंने आदि काल में फारस के मंगोल आक्रमणों में मुख्यत: भाग लिया। भारत के मुस्लिम इतिहासकार करौना लोगों के विषय में कुछ नहीं लिखते।

गयासुद्दीन का उत्कर्ष (His Rise)

गाजी तुगलक एक साधारण परिवार का पुरुष था। उसकी माता पंजाब की एक जाट महिला थी और उसका पिता बलबन का तुर्की दास था। अपने ऐसे जन्म के कारण "गाजी मलिक के चरित्र में इन दो जातियों के मुख्य गुणों–हिन्दुओं की विनम्रता व कोमलता तथा तुर्कों का पुरुषार्थ व उत्साह का मिश्रण हुआ।" यद्यपि उसने अपना जीवन एक साधारण सैनिक की भाँति शुरू किया, तथापि वह अपनी योग्यता व कठिन परिश्रम के कारण प्रसिद्ध हो गया। अलाउद्दीन खिलजी के शासन-काल में वह अभियानों का अध्यक्ष (Warden of Marches) तथा दीपालपुर का राज्यपाल नियुक्त किया गया। 29 अवसरों पर उसने मंगोलों के विरुद्ध संग्राम किया, उन्हें भारत से बाहर खदेड़ दिया और इसलिए मलिक-उल-गाजी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अलाउद्दीन की मृत्यु के समय गाजी मलिक राज्य के अधिक शाक्तिशाली कुलीन व्यक्तियों में से एक था। मुबारक शाह के शासन काल में भी उसकी शक्ति पहले जैसी रही। यद्यपि खुसरो शाह ने उसे अनुरंजित करने का प्रयत्न किया, परन्तु गाजी

मलिक पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। अपने पुत्र जूना खाँ की सहायता से उसने खुसरो शाह पर आक्रमण करके उसे पराजित किया और उसका वध कर दिया। यह कहा जाता है कि दिल्ली में विजेता के रूप में प्रवेश करने के बाद गाजी मलिक ने यह पूछताछ करवाई कि अलाउद्दीन खिलजी का ऐसा कोई उत्तराधिकारी है जिसे वह दिल्ली की गद्दी पर बिठा सके। यह कहना कठिन है कि यह पूछताछ कहाँ तक सत्य थी और कहाँ तक यह आडम्बर था। फिर भी, गयासुद्दीन तुगलक 8 सितम्बर, 1320 ई. को गद्दी पर बैठा। दिल्ली का वह प्रथम सुल्तान था जिसने 'गाजी या काफिरों का घातक' की उपाधि ग्रहण की।

नोट

गृह नीति (Domestic Policies)

गयासुद्दीन तुगलक का शासन-काल दो भागों में बाँटा जा सकता है—गृह-नीति व विदेश नीति। जहाँ तक गृह नीति का सम्बन्ध है, उसका प्रथम कार्य कुलीन जनों व अधिकारियों का विश्वास प्राप्त करना तथा साम्राज्य में व्यवस्था स्थापित करना था। यह सच है कि उसने खुसरो शाह के सहायकों का निर्दयता के साथ निष्कासन करा दिया परन्तु अन्य कुलीन जनों व अधिकारियों के साथ कुछ दयापूर्ण व्यवहार किया। उसने उन सबको उनकी भूमियाँ वापस कर दीं जिन्हें अलाउद्दीन खिलजी ने छीन लिया था। उसने अभियाचनाओं व जागीरों के विषय में एक गोपनीय जाँच की आज्ञा दी और राज्य के अधीन सब गैर-कानूनी अनुदानों को जब्त कर लिया। उसने उस कोष की क्षतिपूर्ति करने की चेष्टा भी की जिसे खुसरो शाह ने अपव्यय के साथ बिगाड़ा था या जो उसके पतन के बाद अशान्ति के समय लूट लिया गया था। इस कार्य में वह बहुत अधिक सफल भी हुआ। बहुत से शेखों ने वह धन उसे लौटा दिया जो उन्होंने खुसरो शाह से बहुत बड़ी मात्रा में प्राप्त किया था। परन्तु शेख निजामुद्दीन औलिया ने, जिसने पाँच लाख टंके प्राप्त किए थे, इस आधार पर धन लौटाने से इंकार कर दिया कि उसने वह सब धन दान कर दिया है। गाजी मलिक को यह बात रुचिकर प्रतीत न हुई, परन्तु वह शेख को उसकी लोकप्रियता के कारण कोई दण्ड न दे सका। उसने शेख की इस आधार पर निन्दा करने का प्रयत्न किया कि वह "प्रफुल्लतापूर्ण रागों व दरवेशों के नृत्यों में तल्लीन रहता है और इस ढंग की भक्ति को संस्थापित धर्म के कट्टर सुन्नी लोग गैर-कानूनी समझते थे।" परन्तु उसे अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त न हो सकी क्योंकि 53 धर्म-विद्वान जिनसे उसने परामर्श किया, शेख के कार्य में कोई दोष नहीं पा सके।

भ्रष्टाचार एवं गबन रोकने के लिए गाजी मलिक ने अपने अधिकारियों को अच्छा वेतन दिया और केवल उनकी पदोन्नति स्वीकार की जिन्होंने अपनी निष्ठा और योग्यता का प्रमाण दिया। पुरस्कारों का वितरण करते समय उसने श्रेणी, योग्यता व सेवा के काल पर विचार किया। उसने समस्त ईर्ष्यास्पद ख्यातियों को हटा दिया। गाजी मलिक एक दृढ़ निर्णय का शासक था। वह एक साधु एवं बुद्धिमान शासक था जो राज्य के महत्त्वपूर्ण विषयों पर अपने परामर्शदाताओं की सदा सलाह लेता था।

नोट

जहाँ तक उसकी आर्थिक नीति का सम्बन्ध है, उसने भूमिकर एकत्र करने के लिए बोली दिलवानी (System of farming of taxes) बन्द कर दी। मालगुजारी की बोली देने वालों को दीवान-ए-विजारत तक सिफारिश पहुँचाने तक की अनुमति नहीं दी गई। मालगुजारी इकट्ठा करने वालों के अत्याचारों को रोका गया। अमीर और मलिक अपने प्रांतों की मालगुजारी का 1/15 से अधिक भाग नहीं ले सकते थे। कारकुनों व मुतसर्रिफों को 5 से 10 प्रति हजार से अधिक लेने की अनुमति नहीं दी गई। यह आज्ञा दी गई कि दीवान-ए-विजारत किसी इकता (Iqta) की मालगुजारी एक वर्ष में 1/10 या 1/11 से अधिक न बढ़ाये। यदि कोई वृद्धि आवश्यक हो तो वह कई वर्षों में की जाए। बरनी (Barani) हमें यह बताता है कि "खिराज एकदम नहीं वरन् बहुत से वर्षों में बढ़ना चाहिए था, क्योंकि ऐसा न करने से देश को हानि होती है व उन्नति का मार्ग रुक जाता है।" एक अन्य आज्ञा इस प्रकार थी–"जागीरदारों व हाकिमों को इस विषय में सावधान रहने के आदेश थे कि वे खिराजों को इस प्रकार एकत्रित करें, जिससे खुत (Khuts) व मुकद्दम लोग राजकीय ऋणों के अतिरिक्त जनता पर अधिक भार न डाल सकें। अकाल के समय करों में भारी रकमों की छूट दी जाती थी और भूमिकर न देने वालों के साथ बड़ी उदारता से व्यवहार किया जाता था।

धन के लिए किसी मनुष्य को कैद में नहीं रखा जाता था और राज्य द्वारा प्रत्येक ऐसी सुविधा प्रदान की जाती थी जो लोगों को बिना किसी असुविधा या आपत्ति के अपने उत्तरदायित्वों का पालन करने के योग्य बना सके।" भूमि को नापने की प्रथा बंद कर दी गई क्योंकि इसका पालन संतोषजनक नहीं था और यह आदेश दिया गया कि भूमिकर उगाहने वाले स्वयं कर निर्धारित करें। गाजी मलिक ने कृषि के अधीन अधिक भूमि को लाने के भी उपाय किए। उसका विचार यह था कि भूमिकर बढ़ाने का सबसे अच्छा मार्ग "कृषि का प्रसार है, माँग की वृद्धि नहीं।"

उसकी नीति का फल यह हुआ कि बहुत-सी बेकार भूमि में भी कृषि होने लगी। खेतों की सिंचाई के लिए नहरें भी खोदी गईं। उद्यान भी लगाए गए। कृषकों को लुटेरों से बचाने के लिए दुर्गों का निर्माण भी किया गया। बारानी के विवरण से पता चलता है कि समस्त वर्गों के साथ एक-सा व्यवहार नहीं किया जाता था। यह भी पता लगता है कि कुछ श्रेणी के लोगों पर "इसलिए कर लगाया जाता था कि वे अधिक धन के कारण अभिमान से अंधे न बन जायें और असन्तुष्ट या उपद्रवी न हो जायें; और दूसरी ओर कहीं इतने निर्धन भी न हो जायें कि निर्धनता के कारण अपना व्यवसाय तक न चला सकें।"

गाजी मलिक ने राज्य के सारे विभागों की ओर ध्यान दिया। "न्यायिक व पुलिस विभाग इतने कुशल थे कि भेड़िया बकरी के बच्चे को पकड़ने का साहस नहीं कर सकता था और शेर व हिरन एक ही घाट पर पानी पीते थे।" अलाउद्दीन द्वारा चलाई गई चेहरा व दाग व्यवस्था जारी रखी गई।

एक बहुत कुशल डाक व्यवस्था का प्रतिपादन भी किया गया। डाक हरकारों व घुड़सवारों द्वारा ले जाई जाती थी जिन्हें मील के 2/3 भागों तथा 6 या 8 मील की दूरी पर सारे राज्य में यथाक्रम रखा जाता था। समाचार एक दिन में सौ मील की गति से चलते थे। गाजी मलिक ने निर्धनों की सहायता व्यवस्था भी की। उसने धार्मिक संस्थाओं तथा साहित्यकारों को संरक्षण दिया। अमीर खुसरो उसका राजकवि था और उसे राज्य से 1000 टंके प्रतिमास पेंशन मिलती थी।

नोट

गाजी मलिक ने "अपने दरबार को ऐसा कठोर व शानदार बना दिया जितना कि वह शायद बलबन के सिवा अन्य किसी समय में नहीं रहा।" उसने उदारता व बुद्धिमता दिखाई। कोई आश्चर्य नहीं कि अमीर खुसरो ने उसकी प्रशंसा इन शब्दों में की है–"उसने कभी कोई ऐसा काम नहीं किया जो बुद्धिमता से युक्त नहीं हो। उसके विषय में यह कहा जा सकता है कि वह राजमुकुट के नीचे शतशः आचार्यों की योग्यता के समान मस्तिष्क रखता था।"

विदेश नीति (Foreign Policy)

विदेश नीति में गाजी मलिक महान विजेता (annexationist) था। वह उन सब राज्यों को अपने आधिपत्य में रखने पर दृढ़ था, जिन्होंने दिल्ली सल्तनत की शक्ति की अवहेलना की थी।

1. अपनी इस नीति का अनुसरण करने में उसने 1321 ई. में अपने पुत्र जूना खाँ (बाद में मुहम्मद तुगलक) को वारंगल के प्रताप रुद्रदेव द्वितीय को दबाने के लिए भेजा, जिसने अलाउद्दीन खिजली की मृत्यु के बाद अराजकता में अपनी शक्ति बढ़ा ली थी और दिल्ली की सरकार को निश्चित कर देने से इंकार कर दिया था। उसने वारंगल के कच्चे दुर्ग को घेर लिया, परन्तु हिन्दुओं ने साहस व दृढ़ विश्वास से उसकी रक्षा की। महामारी और षड्यंत्र के कारण जूना खाँ को बिना सफलता प्राप्त किए वापस आना पड़ा। बारानी तथा याहिया-बिन अहमद के अनुसार जिनका निजामुद्दीन अहमद, बदायूनी व फरिश्ता ने अनुसरण किया है, वे षड्यंत्र सेना में कुछ गद्दारों के कारण हुए थे। परन्तु इब्नबतूता (Ibnbatuta) हमें यह बताता है कि उन षड्यंत्रों का उत्तरदायित्व स्वयं राजकुमार जूना खाँ पर होना चाहिए जो सिंहासन छीनने का इरादा रखता था। सर वुल्जले हेग (Sir Wolseley Haig)] कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, अंक 3, के योग्य सम्पादक, इब्नबतूता के विचार को स्वीकार करते हैं। परन्तु डॉ. ईश्वरी प्रसाद अपने 'करौना तुर्कों का इतिहास' में इस विचार को स्वीकार नहीं करते।

   जूना खाँ को दिल्ली लौट आने के चार महीने के बाद एक अन्य अभियान के नेतृत्व में एक बार फिर वारंगल भेजा गया। यह घटना 1323 ई. की है। जूना खाँ ने बीदर पर अधिकार कर लिया और वह वारंगल की ओर बढ़ा। हिन्दुओं ने बड़ी दृढ़ता से युद्ध लड़ा

नोट

परन्तु वे आक्रमणकारियों के विरुद्ध असफल रहे। अन्ततः प्रताप रुद्रदेव द्वितीय, उसका परिवार व अधिकारी आदि आक्रमणकारियों ने बन्दी बना लिये। राजा को दिल्ली भेज दिया गया। वारंगल का काकतीय साम्राज्य जिसे गाजी मलिक ने अपने साम्राज्य में नहीं मिलाया था, बहुत से जिलों में बाँट दिया गया और विभिन्न तुर्की सरदारों व अधिकारियों को सौंप दिया गया। वारंगल नगर का नाम बदलकर सुल्तानपुर कर दिया गया।

2. जब राजकुमार जूना खाँ दिल्ली लौट रहा था, उसने दिल्ली में उत्कल राज्य पर आक्रमण किया और 50 हाथी एवं बहुत-सी बहुमूल्य वस्तुओं पर अधिकार कर लिया।
3. गाजी मलिक को बंगाल में भी हस्तक्षेप करना पड़ा। शम्मसुद्दीन फिरोजशाह (Shams-Ud-Din Firoz Shah) के तीनों पुत्रों–गयासुद्दीन, शहाबुद्दीन व नासिरुद्दीन के बीच गृह-युद्ध चल रहा था। गयासुद्दीन जो पूर्वी बंगाल का सूबेदार था ने शहाबुद्दीन को हटा दिया और 1319 ई. में लखनौती की गद्दी पर अधिकार जमा लिया। नासिरुद्दीन को गद्दी लेने की चाह थी, इसलिए उसने दिल्ली के सुल्तान से सहायता की प्रार्थना की। उसने प्रार्थना को स्वीकार किया और स्वयं बंगाल की ओर बढ़ा। गयासुद्दीन पराजित हुआ और उसे बन्दी बना लिया गया। नासिरुद्दीन को पश्चिमी बंगाल के सिंहासन पर दिल्ली की अधीनता में बैठा दिया गया और पूर्वी बंगाल को दिल्ली राज्य में मिला लिया गया। दिल्ली लौटते हुए गाजी मलिक ने तिरहुत (मिथिला) के राजा हरसिंह देव को आधिपत्य मानने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार तिरहुत भी दिल्ली सल्तनत का एक भाग (Fief) बन गया।
4. 1324 ई. में मंगोलों ने उत्तरी भारत पर आक्रमण किया, परन्तु उन्हें पराजित करके व उनके नेताओं को पकड़कर दिल्ली लाया गया।

गयासुद्दीन की मृत्यु (Death of Ghias-Ud-Din)

जब गाजी मलिक बंगाल में था, उसे अपने पुत्र जूना खाँ के कृत्यों के विषय में समाचार मिला। अपने लिए एक शक्तिशाली दल बनाने के विचार से जूना खाँ अपने अनुचरों की संख्या बढ़ा रहा था। वह शेख निजामुद्दीन औलिया, जिसके साथ उसके पिता के सम्बन्ध अच्छे न थे, का चेला बन गया। कहा जाता है कि शेख ने एक भविष्यवाणी की थी कि राजकुमार जूना खाँ बहुत शीघ्र दिल्ली का सुल्तान होगा। अन्य ज्योतिषियों ने भी बताया था कि गाजी मलिक दिल्ली नहीं पहुँचेगा। गाजी मलिक शीघ्रता के साथ बंगाल से दिल्ली लौटने के लिए चला। राजकुमार जूना खाँ ने अफगानपुर, दिल्ली से लगभग 6 मील की दूरी पर एक गाँव में एक लकड़ी का भवन अपने पिता का स्वागत करने के लिए बनवाया। भवन इस ढंग का बनाया गया कि वह एक विशेष स्थान पर हाथियों के स्पर्श के साथ गिर पड़े। गाजी मलिक का पंडाल के नीचे स्वागत किया गया। भोजन के बाद जूना

नोट

खाँ ने अपने पिता गाजी मलिक से बंगाल से लाए गए हाथी देखने की प्रार्थना की। गाजी मलिक के स्वीकार करने पर उसके सामने हाथियों का प्रदर्शन किया गया। ज्योंही हाथी भवन के उस भाग के सम्पर्क में आए, जो गिर जाने के उद्देश्य से बनाया गया था, सारा पंडाल गिर पड़ा। गाजी मलिक अपने दूसरे पुत्र राजकुमार महमूद खाँ के साथ कुचला गया। गाजी मलिक महमूद खाँ के शरीर की ओर झुका हुआ देखा गया। ऐसा प्रतीत होता था कि वह उसकी रक्षा करना चाहता था। यह कहा जाता है कि जूना खाँ ने जानबूझकर गिरे हुए भाग को हटाने में देरी करवाई।

गाजी मलिक की मृत्यु की घटना के सम्बन्ध में विभिन्न मत है। बरनी केवल यह बताता है कि आकाश से एक मुसीबत की बिजली सुल्तान पर गिरी और वह पाँच या छः साथियों के साथ ढेर के नीचे कुचला गया। इलियट (Elliot) के अनुवाद से यह ज्ञात होता है कि बिजली छत पर गिरी और सारा भवन झटके के साथ भूमि पर गिर पड़ा। इब्नबतूता जो 1333 ई. में भारतवर्ष आया निश्चय ही हमें बताता है कि राजकुमार जूना खाँ अपने पिता की मृत्यु का कारण था। उसके ज्ञान का स्रोत शेख रुक्नुद्दीन मुल्तानी था जो उस समय सम्राट् के साथ उपस्थित था। वह हमें यह भी बताता है कि राजकुमार जूना खाँ ने जान बूझकर उन कारीगरों को बुलाने में देरी की जिन्होंने औजारों की मदद से सुल्तान का शरीर बाहर निकाला। इब्नबतूता हमें यह भी बताता है कि भवन का निर्माण अहमद अयाज ने करवाया जिसे सुल्तान बनने पर जूना खाँ ने मुख्यमंत्री बनाया था। परिस्थितियों के प्रमाण भी इब्नबतूता के पक्ष में हैं। उसका अपना कोई स्वार्थ प्रतीत नहीं होता। निजामुद्दीन अहमद हमें यह बताता है कि शीघ्रता से भवन का निर्माण यह संशय उत्पन्न करता है कि राजकुमार जूना खाँ ही अपने पिता की मृत्यु के लिए उत्तरदायी है। गाजी मलिक की मृत्यु उस षड्यंत्र के कारण हुई जिसके रचयिता निजामुद्दीन औलिया तथा राजकुमार जूना खाँ थे। इसामी (Isami), एक समकालीन लेखक, निजामुद्दीन अहमद का समर्थन करता है। अबुल फजल व बदायूनी भी जूना खाँ के षड्यंत्र पर संशय करते हैं। डॉ. ईश्वरी प्रसाद का यह विचार है कि यह सोचने के प्रबल कारण हैं कि सुल्तान की मृत्यु उस षड्यंत्र के कारण हुई जिसमें जूना खाँ ने भाग लिया और यह किसी आकस्मिक घटना का फल नहीं था। सर वुल्जले हेग का भी यही विचार है कि सुल्तान की मृत्यु एक षड्यंत्र का परिणाम थी जिसे जूना खाँ ने चतुराई के साथ रचा था। परन्तु डॉ. मेहंदी हुसेन का यह मत है कि भवन स्वयं ही गिर पड़ा। इसमें राजकुमार जूना खाँ का कदापि कोई हाथ नहीं था। परन्तु सर्वमान्य मत यही है कि राजकुमार जूना खाँ ही अपने पिता की मृत्यु के लिए उत्तरदायी था।

मूल्यांकन (Estimate)

गाजी मलिक एक अनुभवी सैनिक व योग्य सेनापति था। वह अपने योग्यता व कठोर परिश्रम के ही कारण इतने ऊँचे स्थान पर पहुँच सका। उसने अपने राज्य में सुव्यवस्था स्थापित की और ऐसे

नोट

विभिन्न कार्य किए जिनका उद्देश्य जनता के सुख और समृद्धि को बढ़ाना था। उसके शासनकाल में लोगों को आर्थिक समृद्धि प्राप्त हुई। न्याय देने के लिए वह दिन में दो बार दरबार करता था। अपने दरबारियों, मित्रों व सहयोगियों के प्रति वह उदार था। परन्तु हिन्दुओं के प्रति वह कठोर था। अपने आक्रमणों के समय वह मन्दिरों का विध्वंस करने तथा मूर्तियों को तोड़ने में लग जाता था। वह एक कठोर सुन्नी मुसलमान था। वह ज्ञान का प्रेमी भी था और उसके दरबार में विद्वान व कवि थे। उसने अपनी राजधानी तुगलकाबाद में किले के रूप में एक रोचक स्मारक छोड़ा जिसे उसने अपने लिए उस स्थान से लगभग 10 मील दूर दक्षिण की ओर बनवाया, जो शाहजहाँ ने अपनी राजधानी के लिए चुना था। उसने अपने सिंहासन पर आरूढ़ होने के तुरन्त पश्चात् इस नगर की नींव डाली और तेलिंगाना पर अपनी विजय का समाचार पाने से पहले ही उसने इसे पूरा भी करा दिया। इब्नबतूता हमें बताता है कि "यहाँ पर तुगलकों के कोष व महल थे और वह विशाल महल जिसे उसने चमकती हुई ईंटों से बनवाया, जब सूरज निकलता था तो

ऐसे चमकता था कि कोई भी उसकी ओर आँखें खोलकर नहीं देख सकता था। वहाँ उसने महान कोष एकत्र किया और यह बताया गया था कि वहाँ पर उसने एक जलाशय भी बनवाया जिसमें उसने पिघला हुआ सोना डाला जिससे वह एक ठोस ढेर-सा बन गया। उसका पुत्र मुहम्मद शाह जब सुल्तान बना तब उसे यह सब प्राप्त हुआ। लाल पत्थर व सफेद संगमरमर का बना हुआ उसका मकबरा, जो पुल से जुड़ा हुआ है और दुर्ग की विशाल दीवारें अब भी शेष हैं।

गाजी मलिक ने ऐसी कठोर नीति का अनुसरण किया जो तुलनात्मक रूप में बहुत कुछ बलबन के समान है। उसने अपने आपको विलास से वंचित रखा। उसने अपने को "सुन्दर बिना दाढ़ी वाले किशोरों" के उस व्यभिचार से बचाया जो उस समय अधिक प्रचलित था। उसने सार्वजनिक जीवन तथा राजकीय कार्यों में बलबन व औरंगजेब जैसे अत्याचार, आडम्बर व वैभव को अलग रखा। "अपने छोटे से शासनकाल में उसने उस अपमान के धब्बे को मिटाने की बहुत चेष्टा की जो दिल्ली के साम्राज्य पर पड़ा हुआ था, उसने बिगड़े हुए शासन-प्रबंध को पुनर्गठित करने का बहुत प्रयास किया। उसने राजस्व की उस शक्ति और मर्यादा को पुनः स्थापित करने का बहुत परिश्रम किया जो खुसरो शाह के शासनकाल में लगभग समाप्त हो चुकी थी।"

कभी-कभी गाजी मलिक की तुलना जलालुद्दीन फिरोज खिलजी से भी की जाती है। सर वुल्जले हेग के अनुसार, "दोनों वृद्ध योद्ध थे जिन्हें इस्लाम का राज्य प्रतिष्ठापित करने का काम सौंपा गया था। इस्लाम को उन वंशों के अन्त होने से स्वयं मिटने का भय था। इस धर्म ने उनकी लम्बे समय से सेवा की थी। परन्तु यहाँ उन सुल्तानों की सारी समानता का अन्त हो जाता है। फिरोज जब गद्दी पर बैठा तब उसकी सब शक्तियाँ क्षीण हो रही थीं। उसके शासन काल के बाद

उसके वंश के इतिहास का अन्त हो जाता, यदि उसके अत्याचारी परन्तु उत्साही भतीजे ने उसका राज्य बलपूर्वक न छीन लिया होता। इसके विपरीत, तुगलक सुल्तान वृद्ध होते हुए भी अपने मस्तिष्क के पूर्ण विकास में था और उसके लघु शासन काल में फिरोज की भाँति कोई भी घृणास्पद बुराई दृष्टिगोचर नहीं होती। वह इस योग्य था कि अलाउद्दीन के बहुत से कल्याणकारी नियमों को लागू कर सके और ऐसे भी नियम बना सके जो ऐसे राज्य में व्यवस्था स्थापित कर दें जो इस्लाम के प्रभाव से लगभग निकल चुका हो। वह तारीखे-फिरोजशाही (Tarikh-i-Firoz Shahi), फिरोज शाह तुगलक का एक जीवन विवरण फतूहात-ए-फिरोजशाही (Fatuhat-i-Firoz Shahi), ऐन उल-मुल्क मुल्तानी (Ain-ul-Mulk Multani) का मुन्शते मैहरू (Munshat-i-Mahru), अमीर खुसरो का तुगलक नामा (Tughluq Nama) और याहिया-बिन-अहमद सरहिन्दी (Yahia-bin-Ahmad Sarhindi) का तारीखे-मुबारक शाही (Tarikh-i-Mubarak Shahi)।

नोट

1.4 मुहम्मद तुगलक

प्रारम्भिक जीवन (Early Life)

राजकुमार जूना खाँ (Prince Juna Khan) जो मुहम्मद तुगलक के नाम से भी जाना जाता है। गयासुद्दीन तुगलक का ज्येष्ठ पुत्र था। उसका पालन-पोषण एक सैनिक की भाँति हुआ था और उसने उसी में अपने को प्रसिद्ध कर लिया। वह एक तीक्ष्ण-वृद्धि वाला बालक था। खुसरो शाह द्वारा उसे 'तुरंगों का स्वामी' नियुक्त किया गया था। परन्तु जूना खाँ ने अपने संरक्षक खुसरो शाह के विरुद्ध एक आंदोलन शुरू कर दिया और उसने खुसरो शाह को उलट फेंकने में अपने पिता की सहायता की। जब 1320 ई. में उसका पिता सम्राट् बन गया, तो राजकुमार जूना खाँ की उत्तराधिकारी के रूप में नियुक्ति हो गई और उसे उलघ खाँ (Ulugh Khan) को उपाधि भी दी गई। उसने 1322 ई. और 1323 ई. में वारंगल में दो अभियानों का नेतृत्व किया और यद्यपि वह अपने प्रथम अभियान में असफल रहा, तथापि वह दूसरे अभियान में सफल हुआ। उसने 1325 ई. में अपने पिता की मृत्यु के शीघ्र बाद ही अपने को गद्दी पर विराजमान किया। चालीस दिन तक वह तुगलकाबाद में रहा, उसके बाद वह दिल्ली नगर की ओर बढ़ा और अपने को बलबन के लाल महल में रखा। उसने अपने मुकुटारोहण के समय सोने व चाँदी के सिक्के लोगों में बाँटे।

1. **गृह नीति** (Domestic Policy): हम मुहम्मद तुगलक के शासन काल की घटनाओं का अध्ययन दो बृहत् भागों में कर सकते हैं–उसकी गृह नीति व उसकी विदेश नीति। जहाँ तक गृह नीति का सम्बन्ध है, मुहम्मद तुगलक अपने शासनकाल के आदि समय से ही

नोट

अपने शासन-प्रबंध के विस्तारों की ओर देखने लगा था। उसने सबसे पहले अपने राज्य की मालगुजारी तथा प्रांतों के व्यय सम्बन्धी रजिस्टरों के संकलन करने का आदेश दिया। प्रांतों के शासकों को यह आवश्यक हो गया कि वे समस्त सम्बन्धित अभिलेख तथा उस कार्य से सम्बन्धित अन्य सामग्रियाँ दिल्ली भेजे। परिणाम यह हुआ कि आय व व्यय के सारांश साम्राज्य के विभिन्न भागों से दिल्ली आने लगे और ठीक प्रकार से कार्य होने लगा।

2. **दोआब में कर** (Taxation in the Doab)**:** सुल्तान ने गंगा व यमुना के बीच दोआब में एक वित्तीय प्रयोग किया जिसका परामर्श ठीक नहीं था। उसने केवल कर की दर ही नहीं बढ़ाई, वरन् उसने कुछ अन्य आबवाबों या उपकरों (cesses) का पुनर्जीवन व निर्माण भी किया। लागू की गई वास्तविक धनराशि के विषय में समकालीन व आगामी मुस्लिम लेखकों के विवरणों में कुछ अस्पष्टता व विपरीतताएँ हैं। बारानी कहता है कि करों को 10 से 20 गुना तक अधिक बढ़ा दिया गया था। इलियट के अनुवाद में यह सीमा 10% या 5% बताई गयी है। तारीख-ए-मुबारक शाही में यह बताया गया है कि वृद्धि बीस गुनी थी और इसमें गढ़ी या मकान कर या चराही कर भी जुड़े थे। बदायूनी के अनुसार करों को दुगुना कर दिया गया था। इन परिस्थितियों में आधुनिक लेखकों ने यह संकेत किया है कि अत्यधिक कर 5% से अधिक नहीं था। यह भी कहा जाता है कि दोआब के लोगों पर सुल्तान द्वारा इन अधिक करों के लगाए जाने का ध्येय दण्डात्मक (Punitive) नहीं था जैसा कि बदायूनी (Badauni) और सर वुल्जले हेग ने बताया है, "वरन् यह सैनिक शक्ति बढ़ाने और कुशल आधारों पर शासन-प्रबंध संगठित करने के लिए किया गया था।" चाहे कुछ भी सत्य हो यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इस कार्य से अत्यन्त कठिनाई उत्पन्न हुई जो दोआब के लोगों को उठानी पड़ी। बारानी हमको यह बताता है कि "किसानों की कमर टूट गई। वे जो धनी थे उपद्रवी हो गए; भूमि बर्बाद हो गई और कृषि की उन्नति रुक गई।

अनाज महंगा हो गया; वर्षा में कमी आ गई, इसलिए दुर्भिक्ष सर्वव्यापी हो गया। यह वर्षों तक चलता रहा और इसलिए हजारों मनुष्य मर गए।" डॉ. ईश्वरी प्रसाद कहते हैं कि "दुर्भाग्यवश इस उपाय को ऐसे समय लागू किया गया था जबकि दोआब में कठोर दुर्भिक्ष चल रहा था, इसके भयंकर परिणामों ने जनता की कठिनाई को और भी बढ़ा दिया था। यह सुल्तान को दोष से मुक्त नहीं करता, क्योंकि उसके अधिकारी बढ़ी हुई दर पर कर लगाते रहे और उन्होंने दुर्भिक्षों की ओर कोई ध्यान न देते हुए कठोरता के साथ काम किया।" सुल्तान के सहायतार्थ उपाय जैसे कृषकों को ऋण देना, कुएँ खुदवाना और "अकृष्य भूमि को प्रत्यक्षत: राज्य प्रबंध व वित्तीय सहायता के आधार पर हल द्वारा कृषि कार्य में लाना" बहुत देर में घटित हो सके। कृषक जाति ने अपने स्थान

छोड़ दिए और अन्य स्थानों पर चले गए। सुल्तान बहुत रुष्ट हो गया और उसने किसानों को उनके वास्तविक स्थानों पर वापस लाने में बहुत कठोर रीतियों का प्रयोग किया। जहाँ तक तुगलक वंश के भविष्य से सम्बन्ध है, इस सब का बहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

नोट

1. **सुल्तान ने कृषि के एक नए विभाग की स्थापना की जिसे दीवाने कोही** (Diwan-i-Kohi) कहते थे। इस विभाग का मुख्य ध्येय कृषकों को प्रत्यक्ष सहायता देकर अधिक भूमि कृषि कार्य के अधीन लेना था। 60 वर्ग मील की भूमि का एक लम्बा टुकड़ा इस कार्य के लिए चुना गया। भूमि पर कृषि की गई और हेर-फेर के साथ विभिन्न फसलों की उपज की गई। दो वर्षों में सरकार ने 70 लाख से अधिक व्यय किया। भूमि उन मनुष्यों को दी गई जिन्हें उसकी जरूरत थी। दुर्भाग्यवश यह प्रयोग भी असफल रहा। प्रयोग के लिए लिया गया खेत अनुपजाऊ निकला। तीन वर्षों की अवधि भी कोई पक्का परिणाम न दे सकी। धन भी ठीक प्रकार से व्यय नहीं हुआ और इसका काफी बड़ा भाग केवल बेकार ही गया।

2. **दौलताबाद के लिए राजधानी का स्थानांतरण (1327)** (Transfer of Capital): एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रयोग जो सुल्तान ने किया वह दिल्ली से दौलताबाद के लिए राजधानी का बदलना है। बारानी लिखता है कि दौलताबाद की केन्द्रीय स्थिति थी और दिल्ली, गुजरात, लखनौती तेलिंगाना व अन्य प्रमुख स्थानों से लगभग 700 मील दूर थी।

   यह नयी राजधानी सामरिक महत्त्व रखती थी। यह मंगोलों के आक्रमणों से सुरक्षित भी थी जो स्थायी रूप से दिल्ली को धमकी देते रहते थे। सुल्तान ने दौलताबाद को अपने अधिकारियों व जनता के लिए उचित स्थान बनाने का पूरा प्रयत्न किया। उन सब को जिन्हें दौलताबाद के लिए प्रस्थान करना था, ये सब सुविधाएँ प्रस्तुत की गईं। उनकी सुगमता के लिए एक विशाल सड़क बनवाई गई। सड़क के दोनों ओर छायादार वृक्ष लगाए गए। दिल्ली व दौलताबाद के बीच एक सुव्यवस्थित डाक व्यवस्था की स्थापना की गई।

   परन्तु जब दिल्ली के लोगों ने दौलताबाद जाने में संकोच प्रकट किया तो सुल्तान अप्रसन्न हो गया और उसने सब लोगों को अपनी सारी सम्पत्ति के साथ दिल्ली छोड़कर दौलताबाद चलने का आदेश दिया। इब्नबूतता बताता है कि सम्राट एक अंधे मनुष्य को दिल्ली से दौलताबाद खींच कर ले गया और एक बिस्तर पर पड़े अपाहिज को अस्त्रक्षेपक द्वारा वहाँ ले जाया गया। दौलताबाद के लिए राजधानी के स्थानांतरण के विषय में बारानी का मत है कि "बिना परामर्श व बिना उतार-चढ़ाव देखे हुए, उसने दिल्ली को बर्बाद कर दिया जिसमें 170 या 180 वर्षों से समृद्धि फैली हुई थी और जो बगदाद व काहिरा का मुकाबला कर रही थी। वह नगर, जिसमें चार-पाँच मील तक सरायें, बस्तियाँ व ग्राम बसे हुए थे, नष्ट-भ्रष्ट अर्थात् निर्जन हो गया। कोई बिल्ली व कुत्ता तक न बचा। मनुष्यों को

नोट

उनके परिवारों के साथ समूहों के रूप में टूटे हुए हृदयों के साथ पलायन पर विवश कर दिया गया; बहुत से लोग तो सड़कों ही पर मर गए और जो देवगिरि पहुँचे वे ऐसे निर्वासन को सहन न कर सके और घुट-घुट कर मरने लगे। देवगिरि जैसे काफिर क्षेत्र में चारों ओर मुसलमानों की कबरें फैल गईं। सुल्तान यात्रा के लिए बाहर जाने वालों व आ पहुँचने वालों के प्रति बहुत उदार था; परन्तु वे नि:सहाय थे और वे निर्वासन को सहन न कर सके। उन्होंने उस अपवित्र देश में अपने सिरों को झुका दिया और भीड़ में से अपने निजी स्थानों तक लौट आने के लिए थोड़े ही बच सके।"

सुल्तान ने अपने प्रयोग की त्रुटि महसूस की और उसने लोगों को लौट चलने का आदेश निकाला। परिणाम यह हुआ कि जो लोग दौलताबाद की यात्रा से बचे भी थे, वे लौटते हुए यात्रा में मर गए। इस अनुभव का मूल परिणाम यह निकला कि दिल्ली अपना पुराना वैभव व समृद्धि खो बैठी। यह ठीक है कि "सुल्तान अपने प्रदेश के कुछ नगरों से योग्य मनुष्यों और सज्जनों, व्यापारियों व भूमि पतियों को दिल्ली नगर में लाया और उनका वहाँ रहने का प्रबंध किया," परन्तु जब इब्नबतूता दिल्ली आया तो उसने (1334 ई. में) वहाँ के कुछ भागों को फिर भी निर्जन पाया। **लेनपूल** (Lane Poole) के अनुसार, "दौलताबाद एक पथभ्रष्ट शक्ति का स्मारक था।" डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, यह संदेहास्पद है कि दौलताबाद के लिए राजधानी का तबादला सुल्तान को इस बात की सहायता प्रदान करता है कि वह अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों पर दृढ़ आधिपत्य बनाए रख सके। सुल्तान ने यह नहीं देखा कि दौलताबाद साम्राज्य के उत्तरी सीमा प्रांतों से बहुत दूरी पर स्थित था और उन सीमाओं की ओर स्थायी रूप से निगरानी रखना आवश्यक था। उसने उस चेतावनी की ओर उदासीनता बरती कि हिन्दुओं के उपद्रव व मंगोलों के आक्रमण उसके साम्राज्य को किसी भी समय खतरे में डाल सकते हैं। यदि ऐसी आकस्मिक परिस्थिति आ जाती, तो सुल्तान उसका सामना करने में अवश्य असमर्थ रहता।

3. **टकसाल का प्रयो**ग (1329-30) (Currency Experiment): एडवर्ड टामस (Edward Thomas) ने मुहम्मद तुगलक को "धनवानों का राजकुमार" बताया है। बताते हैं कि उसके शासन काल का प्रथम कार्य यह था कि मुद्रा ढलाई (Coinage) को नया रूप दिया गया। उसके विभाजन को बहुमूल्य धातुओं के परिवर्तित मूल्यों के अनुसार पुन: स्थापित कर दिया जाये और आधीन प्रवाह के लिए नए व अधिक ठीक प्रतिनिधियों की उत्पत्ति की जाये। एक नया सोने का सिक्का जिसका भार 200 दानों के तुल्य था और जिसे इब्नबतूता ने दीनार बताया उसे मुहम्मद तुगलक ने निर्गमित किया। उसने 175 दानों के तुल्य भार के सोने व चाँदी के पुराने सिक्कों की जगह असली सिक्कों को फिर से चालू किया

जिनका भार 140 चाँदी के दानों के बराबर था। कदाचित् यह परिवर्तन इसलिए था कि "चाँदी की अपेक्षा सोने का सापेक्ष महत्त्व गिर चुका था, दक्षिण के अभियानों के कारण साम्राज्य का कोष पुरानी धातु के सिक्कों से विशाल मात्रा में भर चुका था।"

नोट

1329 ई. और 1330 ई. में सुल्तान ने तांबे के सिक्कों में सांकेतिक सिक्कों की मुद्रा निर्गमित की। चीन व फारस में पहले से ही ऐसी मुद्रा का प्रचलन था। चीन के मंगोल सम्राट कुबलाई खाँ ने तेरहवीं शताब्दी के अन्त के समय चीन में कागजी मुद्रा का प्रचलन किया था। फारस के शासक गाई खाटू (Gai Khatu) ने 1294 ई. में ऐसा ही प्रयोग किया। अपने सम्मुख ऐसे उदाहरणों के साथ मुहम्मद तुगलक ने एक आदेश जारी किया जिसमें घोषित किया कि समस्त लेन-देन में सोने व चाँदी के सिक्कों की भाँति तांबे के सिक्के भी कानूनी रूप से स्वीकार किए जायें। बारानी के अनुसार, "इस आदेश ने प्रत्येक हिन्दू के घर को टकसाल में बदल दिया और प्रांतों के भारतीय जनों ने तांबे के लाखों व करोड़ों सिक्के बना लिए जिससे उन्होंने अपने भुगतान किए और घोड़े, अस्त्र-शस्त्र व सब प्रकार की उम्दा वस्तुएँ खरीद लीं। धनी लोग, ग्रामीण अध्यक्ष तथा भूमिपति इन तांबे के सिक्कों से धनवान बन गए और राज्य का कोष खाली हो गया। थोड़े ही समय में दूर के देश केवल तांबे के टंके को ही धातु स्वीकार करने लगे और उन स्थानों में जहाँ आदेश के प्रति सम्मान प्रचलित था सोने का टंका तांबे के सौ टंकों के मूल्य के बराबर हो गया। प्रत्येक सुनार अपनी प्रयोगशाला में तांबे के सिक्के ढालने लगा और राजकोष उनसे भर गया। उनका मूल्य इतना गिर गया कि वह पत्थरों व मिट्टी के टुकड़ों के बराबर भी न रहा। जब व्यापार में रूकावट आ गई, तो सुल्तान ने अपना आदेश तोड़ दिया और बड़े क्रोध में आकर यह घोषित किया कि सारे तांबे के सिक्के राजकोष से सोने व चाँदी के सिक्कों में बदल लिए जायें। हजारों लोगों ने उन्हें विनिमय के लिए खरीद लिया और उनके ढेर तुगलकाबाद में पहाड़ों की भाँति लग गए।" बारानी हमें बताता है कि यह प्रयोग दो कारणों से था। प्रथम कारण विजय की महान सेना, जिसकी संख्या 3,70,000 थी, बनाए रखने के लिए धन की आवश्यकता थी। दूसरा कारण यह था कि सुल्तान के अपव्ययी उपहारों के कारण राजकोष में महान कमी आ गई थी। शायद एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि उस समय बाजार में चाँदी की अपेक्षाकृत कमी हो गई थी। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, एक अन्य सम्भव कारण सुल्तान का प्रयोग के लिए चाव हो सकता है क्योंकि सुल्तान एक नए ही दिमाग का मनुष्य था जो अपने समय की कलाओं व विज्ञानों में खूब कुशल था। सुल्तान ने एक वैज्ञानिक भाव से इस नए प्रयोग के लिए एक प्रबल भावना का आभास किया होगा। ऐसे राजसी आदेश, जिनसे मुद्रा का चलन तथा बाद में सुल्तान का व्यवहार प्रकट हुआ, प्रभावोत्पादक रूप से उस नियमहीनता का दोष काट देते हैं जो आधुनिक लेखकों ने उस पर थोपा है।

नोट

मुहम्मद तुगलक के इस मुद्रा वाले प्रयोग की असफलता के लिए कई कारण बताए गए हैं। यह कहा जाता है कि यह विचारयुक्त संगठित उपाय इसलिए असफल रहा क्योंकि यह समय से बहुत पहले हो गया और लोग उसका वास्तविक महत्त्व न समझ सके। उन दिनों में लोगों के लिए पीतल पीतल था व तांबा तांबा था, चाहे राज्य की आवश्यकता कितनी ही अनिवार्य क्यों न हो। प्रयोग की असफलता का दूसरा कारण यह था कि सुल्तान ने तांबे के सिक्कों को निर्गमित करने का काम केवल राज्य के एकाधिकार में नहीं रखा। एडवर्ड टामस के अनुसार, "ऐसा कोई विशेष यंत्र नहीं था जो राजसी टकसाल और कारीगर के बनाए हुए सिक्के में अन्तर निकाल सके। चीन में कागजी नोटों की नकल को रोकने के लिए जो प्रतिबंध लगे हुए थे, वे तांबे के सिक्कों को अधिकृत बनाने पर नहीं थे और जनता की सिक्के बनाने की शक्ति पर कोई भी प्रभावकारी नियंत्रण नहीं था।" **एल्फिन्सटन** (Elphinstone) की आपत्ति यह है कि सांकेतिक टकसाल की असफलता का कारण शासन का अस्थायित्व तथा सुल्तान का दिवालियापन था। यह आपत्ति निराधार पाई गई है क्योंकि सुल्तान ने सफल रूप से तांबे के सांकेतिक सिक्कों की जगह सोने व चांदी के सिक्के देकर बहुत जल्दी सारे सिक्के वापस ले लिए। यदि सुल्तान दिवालिया होता तो वह विनिमय में सोने-चाँदी के सिक्के देने योग्य कभी न होता। ब्राउन (Brown) का विचार है कि यह टकसाल की समस्या चौदहवीं शताब्दी में संसार में चाँदी की पूर्ति में कमी के कारण हुई। लगभग 1335 ई. में इंग्लैण्ड में एडवर्ड तृतीय के शासन काल में भी इसी प्रकार से सिक्कों की कमी आ गई थी। अन्य देशों में इसी प्रकार की कठिनाइयों का अनुभव किया गया था।

उदार शासन प्रबंध (Liberal Administration)

मुहम्मद तुगलक एक योग्य व्यक्ति था और उसने सब विषयों में उलेमाओं के आदेश स्वीकार करने से इंकार कर दिया। केवल चार कानूनी कर थे–खिराज, जकात, जजिया और खमसा। लेकिन मुहम्मद तुगलक ने उनके अतिरिक्त और भी कर लगाए थे। मुहम्मद तुगलक कोई अंधा धर्म-विश्वासी नहीं था और इसलिए उसने अपने पूर्ववर्तियों तथा उत्तराधिकारियों की अपेक्षा हिन्दुओं की भावनाओं के प्रति काफी सम्मान बरता। उसने सती प्रथा रोकने का प्रयत्न किया। उसने स्वतंत्र राजपूत रियासतों में हस्तक्षेप नहीं किया और उसका यह काम धर्मप्रचारक वर्ग को रुचिकर नहीं था। उसने धार्मिक गुरुओं को न्याय के शासन-प्रबंध पर एकाधिकार से वंचित कर दिया। उसने अपने को याचना का सबसे बड़ा न्यायालय बनाया और जब कभी वह मुफ्तियों से असहमत हुआ, उसने उनके विचार को ठुकरा दिया और अपने विचारानुसार काम किया। राज्य के कुछ ख्याति-प्राप्त अधिकारियों को न्यायिक शक्तियाँ दी गईं हालांकि वे काजी या मुफ्ती नहीं थे। मुहम्मद तुगलक का भाई मुबारक खाँ दीवानेखाना में काजी के पास उसे मुकद्दमों के फैसले के कार्य में सहायता देने के लिए बैठता था। सुल्तान ने धर्म प्रचारक वर्ग के कुछ मनुष्यों को कठोर दण्ड दिया क्योंकि वे खुले विद्रोह, विप्लव तथा कोष के गबन के अपराधी पाए गए। धर्म प्रचारकों के वर्ग से यह आशा नहीं की

गई थी कि वह उस शासक को पसंद करेगा जो शेखों और सैय्यदों तक को जिन्हें मुस्लिम शासक पवित्र समझते थे, दण्ड देगा।

मुहम्मद तुगलक ने अपने को ईश्वर का प्रतिबिम्ब समझा। उसके सिक्कों के कुछ लेख बताते हैं कि "राजशक्ति प्रत्येक मनुष्य को नहीं दी गई है, वरन् निर्वाचित व्यक्तियों को दी गई है। वह जो सुल्तान का सच्चे रूप में आज्ञापालक है, वह ईश्वर का सच्चा आज्ञापालक है। सुल्तान ईश्वर का प्रतिबिम्ब है और ईश्वर सुल्तान का सहायक है।" उसने खलीफा के लिए मुकद्दमों का भेजना रोक दिया।

नोट

परन्तु, जब वह बहुत बदनाम हो गया तो उसने खलीफा के प्रति अपना व्यवहार बदल दिया और मिस्र के खलीफा से दिल्ली के सुल्तान की पुष्टि करने की प्रार्थना की। उसने अपने नाम के स्थान पर सिक्कों पर खलीफा का नाम खुदवा दिया। सारे राजसी आदेश खलीफा के नाम जारी किए जाने लगे। 1344 ई. में मुहम्मद तुगलक ने मिस्र के खलीफा द्वारा भेजे गए दूत हाजी सईद सरसरी का स्वागत किया। दूत का भव्य सम्मान के साथ स्वागत किया गया। सुल्तान, राज्य के सारे बड़े अधिकारी, सैय्यद लोग, पवित्र व योग्य मनुष्य और हर कोई जो अपना कोई महत्त्व प्रदर्शित कर सकता था, दूत का स्वागत करने के लिए दिल्ली के बाहर गए। सुल्तान नंगे पैर चला। जब दूत उसके पास आया तो उसने कई बार उसके चरण चूमे। नगर में विजय की महराबें मनाई गईं और दिल खोलकर दान दिया गया।" दूत के भाषणों को लिख लिया गया और उनको दुहराया गया जैसे कि उनसे प्रेरणा ली गई हो। बारानी के अनुसार,

"खलीफा के आदेश के बिना, राजा ने पानी का एक घूँट पीने का साहस नहीं किया।" इस सबके होते हुए भी मुहम्मद तुगलक ने अपनी जनता का विश्वास व निष्ठा प्राप्त नहीं की। वह पहले की भाँति अलोकप्रिय बना रहा।

विदेश नीति (Foreign Policy)

1. दिल्ली की सल्तनत मुहम्मद तुगलक के शासन काल में विदेशी संकटों से मुक्त न रह सकी। 1328-29 ई. में तरमाशीरीं खाँ (Taramashirin Khan) जो ट्रांसोक्सियाना का चुगताई सरदार था, ने भारत पर आक्रमण किया। उसने मुल्तान और लाहौर से लेकर दिल्ली के बाहरी भाग तक छापा मारा। ऐसा पता चलता है कि दिल्ली से दौलताबाद के लिए राजधानी का स्थानांतरण और मुहम्मद तुगलक द्वारा उत्तरी सीमाओं की रक्षा के प्रति उदासीनता ने मंगोलों को भारत पर आक्रमण करने की प्रेरणा दी। आक्रमणों के उदय के विषय में लेखकों के बीच मतभेद हैं। याहिया-बिन-अहमद व बदायूनी यह बताते हैं कि मुहम्मद तुगलक ने मंगोलों को हराया और उन्हें देश के बाहर निकाल दिया। परन्तु फरिश्ता का मत है कि मुहम्मद तुगलक ने आक्रमणकारियों को रिश्वत देकर लौट जाने योग्य बना दिया। आक्रमणकारियों को सुल्तान द्वारा दिये गए सोने व रत्नों को "राज्य का

नोट

मूल्य" समझा गया है। चाहे कुछ भी सच हो, "आक्रमण केवल एक छापे की तरह था और तरमाशीरीं अचानक ऐसे अदृश्य हो गया जैसे आया था।"

2. मुहम्मद तुगलक का विचार विश्व विजय का था। उसने खुरासान व ईराक जीतने का निश्चय किया और इस काम के लिए एक बड़ी सेना का संगठन भी किया। ऐसा करने में उसे उन खुरासानी कुलीनों से प्रेरणा मिली थी जिन्होंने उसके दरबार में शरण ली। इसमें उनके अपने निजी स्वार्थ भी थे। जियाउद्दीन बारानी हमें बताता है कि लगभग 3,70,000 मनुष्य दीवाने-अर्ज या भर्ती कार्यालय में प्रविष्ट किए गए थे। पूरे एक वर्ष तक उनको इसका वेतन दिया गया था। यह इंकार नहीं किया जा सकता कि खुरासान में अबू सईद के बदनाम शासन के कारण अव्यवस्था थी और मुहम्मद तुगलक निश्चय ही उसका लाभ उठा सकता था। परन्तु यह भूला नहीं जा सकता कि मुहम्मद तुगलक की स्थिति स्वयं भारत में स्थायी नहीं थी और इसलिए विदेशी भूमि को जीतने का विचार तक उसके लिए एक मूर्ख कार्य था। इसके अतिरिक्त उसने यातायात की समस्या पर कोई ध्यान नहीं दिया। भौगोलिक कठिनाइयों के प्रति भी उदासीनता बरती गई। यह बात पूर्णतया भुला दी गई कि हिमालय व हिन्दूकुश के पहाड़ी मार्गों से होकर ऐसी विशाल सेना का निकालना भी एक कठिन कार्य था और उस सेना का भोजन व ऐसे दूर के देश में जीवन की अन्य आवश्यकताओं का प्रबंध करना भी कोई सरल कार्य नहीं था। इसके अतिरिक्त भारत के मुस्लिम सैनिक मध्य एशिया के कठोर योद्धाओं के सामने कोई जोड़ नहीं हो सकते थे। मुहम्मद तुगलक मिस्र के सुल्तान व तरमाशीरीं खाँ की सहायता पर निर्भर नहीं रह सकता था। मुहम्मद तुगलक को सहायता देने की अपेक्षा उनके कुछ अपने भी स्वार्थ थे। यह ठीक कहा गया है कि प्रत्येक दृष्टिकोण से यह योजना पूर्ण रूप से अदूरदर्शितापूर्ण थी और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उसे यह त्यागनी पड़े। जियाउद्दीन बारानी यह विचार प्रकट करता है कि "वे देश प्राप्त न किए जा सके जिनका मोह था.....और उसका कोष जो राजनैतिक शक्ति का सच्चा स्रोत था व्यय कर दिया गया।"
3. नगरकोट का किला पंजाब में कांगड़ा जिले में एक पहाड़ी पर स्थित था। इसने महमूद गजनी के समय से पूर्व यके तुर्की सेना को परास्त किया था। यह अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में जीतने से रह गया था। 1337 ई. में मुहम्मद तुगलक ने नगरकोट के विरुद्ध आक्रमण की तैयारी की। हिन्दू राजा ने विरोध किया परन्तु हार गया। सुल्तान ने उसे दुर्ग वापस कर दिया।
4. फरिश्ता की अध्यक्षता में अनुसरण करते हुए भारतीय इतिहास के बहुत से लेखकों ने यह गलत विचार दिया है कि मुहम्मद तुगलक ने चीन के विरुद्ध आक्रमण हेतु सेना भेजी। परन्तु जियाउद्दीन बारानी तथा इब्नबतूता द्वारा यह स्पष्ट रूप से बताया जाता है कि मुहम्मद तुगलक ने कराजल का पहाड़ जीतने का इरादा किया जो भारत व चीन के प्रदेशों के

बीच स्थित है। इब्नबतूता हमें बताता है कि कराजल पहाड़ दिल्ली से 10 मील दूरी पर स्थित था। ऐसा पता चलता है कि अभियान कमायूँ गढ़वाल क्षेत्र के कुछ पहाड़ी लोगों को दिल्ली सल्तनत के आधिपत्य में लाने के लिए किया गया था। इस काम के लिए 1337-38 ई. में एक बड़ी सेना भेजी गई थी। प्रथम आक्रमण सफल रहा, परन्तु जब वर्षा ऋतु आई तो आक्रमणकारियों को बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी। सेना का सारा सामान पहाड़ियों ने लूट लिया। जियाउद्दीन बारानी के अनुसार 10 घुड़सवार ही संहार की कथा सुनाने वापस लौटे। परन्तु इब्नबतूता के अनुसार यह संख्या 3 थी। इस असफलता के होते हुए भी, अभियान का उद्देश्य पूरा हो गया। पहाड़ी लोगों ने विरोध की मूर्खता का आभास कर लिया और सुल्तान को सम्मान देने के विचार से सहमत होते हुए अच्छे सम्बन्ध बना लिए।

नोट

5. बंगाल दिल्ली सल्तनत के प्रति कभी वफादार नहीं रहा था। फखरुद्दीन (Fakhar-Ud-Din) बहराम खाँ के लौहकोट-धारक और पूर्वी बंगाल के शासक ने अपने स्वामी का वध कर दिया और 1336-37 ई. में उसका प्रदेश छीन लिया। लखनौती का शासक कदर खाँ (Qadr Khan) उसके विरुद्ध बढ़ा और स्वयं मारा गया। फखरुद्दीन ने मुहम्मद तुगलक की कठिनाइयों से लाभ उठाया और अपने को बंगाल का स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। उसने अपने नाम के सिक्के तक निकलवा दिए। भोज्य-पदार्थों व जीवन की अन्य आवश्यकताओं का मूल्य इतना कम था कि फारस के लोग बंगाल को "सब अच्छी वस्तुओं से भरा हुआ नरक" कहते थे।

6. **ऐन-उल-मुल्क मुल्तानी** (An-ul-Mulk Multani) अवध का शासक था। वह एक वफदार अधिकारी, एक महान सैनिक व एक सुशिक्षित विद्वान् था। वह कारा के निजाम मईन के विप्लव को दबाने के लिए उत्तरदायी था। जब अवध में अकाल पड़ा तब उसने दानों के मूल्य के 70 से 80 लाख तक के टंके भेजे। इन सेवाओं के होते हुए भी 1340-41 ई. में उसे दौलताबाद जाकर वहाँ के उपद्रव दबाने का आदेश दिया गया। ऐन-उल-मुल्क ने यह सोचा कि ऐसे कार्य का आशय अवध में उसके सम्मान का पतन तथा कूटनीति यातायात द्वारा उसकी शक्ति का घटाना है। उसने सुल्तान से यह प्रार्थना की कि उसे दक्षिण न भेजा जाये, परन्तु जब सुल्तान ने आग्रह बनाए रखा तो उसने उपद्रव मचा दिया। वह पराजित हुआ और बन्दी बना लिया गया। उसे पद से निष्कासित कर दिया और बहुत अपमान के साथ उसे रखा गया। चूँकि सुल्तान यह जानता था कि ऐन-उल-मुल्क एक कमजोर दिल वाला विद्रोही था, अत: उसे मुक्त कर दिया गया और उसे दिल्ली के राजसी उद्यानों का संरक्षक नियुक्त कर दिया गया।

7. राज्य के अस्थायित्व से लाभ उठाते हुए सिंध में लूटमारी ने बोलबाला पैदा कर लिया। मुहम्मद तुगलक स्वयं अपनी सेना के साथ वहाँ पहुँचा। लुटेरे तितर-बितर हो गए और

उनके नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया और इस्लाम धर्म स्वीकार करने को बाध्य किया गया।

नोट

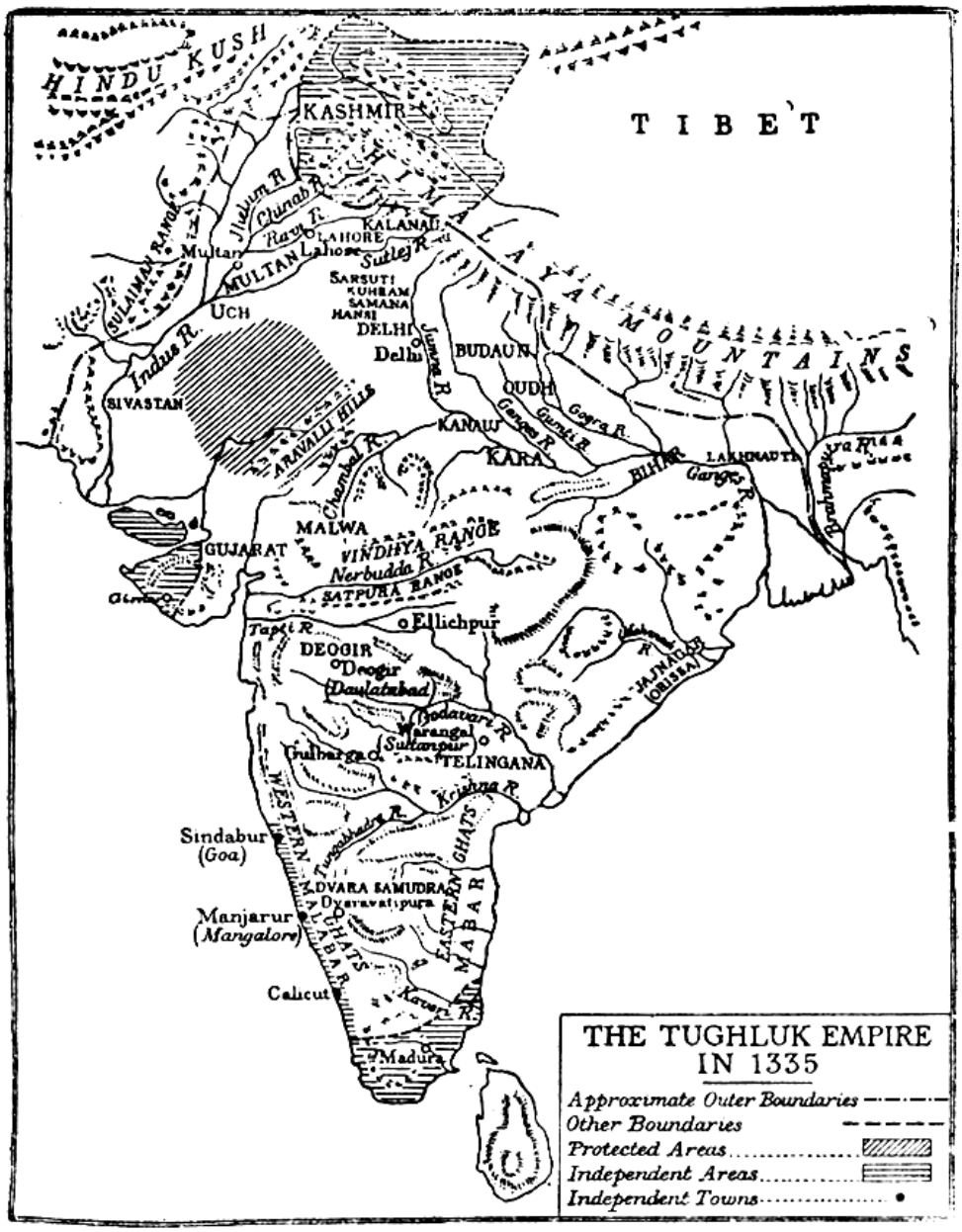

8. 1336 ई. में एक उत्साही हिन्दू नेता हरिहर ने विजयनगर के हिन्दू राज्य की स्थापना की, उसने कृष्णा नायक, प्रतारुद्र काकतीय के पुत्र की सहायता भी की जबकि उसने 1343-44 ई. में मुहम्मद तुगलक के विरुद्ध विद्रोह किया। बल्लाल द्वितीय ने वारंगल पर अधिकार जमा लिया और उसका मुस्लिम शासक इमाद-उल-मुल्क दौलताबाद भाग गया। फरिश्ता के अनुसार, बल्लाल देव व कृष्णा नायक दोनों ने अपनी सेनाएँ मिला लीं और माबर व द्वार समुद्र को मुस्लिम नियंत्रण से मुक्त कराया। सब दिशाओं में युद्ध व विद्रोह की लपटें

भड़क उठीं और दूर के प्रदेशों में सुल्तान के पास सिवाय गुजरात व देवगिरि के कुछ न बचा।"

नोट

9. कुतलग खाँ (Qutlugh Khan) दौलताबाद का प्रांताध्यक्ष था। उसके आधीन अधिकारियों ने बहुत-सा सार्वजनिक धन गबन कर लिया था और इसलिए मुहम्मद तुगलक ने ऐन-उल-मुल्क मुल्तानी को दौलताबाद भेजने का निश्चय किया। ऐन-उल-मुल्क के अभियान के बाद भी यह काम न हो सका। इसके होते हुए भी, कुतलग खाँ दौलताबाद से वापस बुला लिया गया और अलीम-उद्दीन-उल मुल्क को दौलताबाद का प्रांताध्यक्ष नियुक्त कर दिया गया। फिर भी स्थिति में सुधार न हो सका। फरिश्ता के अनुसार, "कुतलग खाँ के हटने पर लोग अप्रसन्न हो गए और नए शासन प्रबंध द्वारा प्रदर्शित असामर्थ्य भाव ने सब ओर विद्रोहों को जन्म दिया। परिणाम यह हुआ कि देश निर्जन व नष्ट हो गया।"

10. अजीज खुम्मर (Aziz Khummar) मुहम्मद तुगलक द्वारा मालवा व घार का शासक नियुक्त किया गया था। उसका व्यवहार कुलीन सरदारों के प्रति आपत्तिजनक था और इसलिए उन्होंने विद्रोह कर दिया। शासक ने ऐसे 80 सरदार पकड़वा लिये और दूसरों को आतंक में लाने के लिए उन्हें अपने महल के सामने कत्ल करा दिया। वह बहुत ज्यादा अत्याचार था और इसलिए हर जगह संकट उठ खड़ा हुआ। अजीज खुम्मर पकड़ लिया गया और उसकी अपमानजनक मृत्यु की गई।

11. सुल्तान अपनी शक्ति का उल्लंघन सहन न कर सका और फलस्वरूप वह एक सेना के साथ गुजरात की ओर बढ़ा और अपने हाथ आने वाली प्रत्येक वस्तु का उसने संहार कर दिया। उसी समय उसे देवगिरि में विद्रोह का समाचार मिला और इसलिए उसने देवगिरि की ओर प्रस्थान किया। वहाँ हिन्दुओं, अफगानों व तुर्कों ने मिलकर सुल्तान के विरुद्ध सिर उठाया था, परन्तु सुल्तान ने विद्रोहियों से दौलताबाद वापस ले लिया। जब वह दौलताबाद में था, उसे गुजरात में एक दूसरे विद्रोह का समाचार मिला। वहाँ विद्रोह का नेता सरदार तगी (Taghi) था जो कि एक साधारण जूता बनाने वाला तथा मुस्लिम कुलीनों का एक दास था। वह समस्त असंतुष्ट तत्वों को अपने आधीन लाने में सफल रहा। उसने सफलता के साथ नहरवाला, कैम्बे व भड़ोच के स्थानों को लूट लिया और उन्हें अपने अधिकार में कर लिया। फिर भी मुहम्मद तुगलक तगी को गुजरात से भगाने तथा उसे सिन्ध में शरण लेने योग्य बनाने में सफल रहा। अंततः गुजरात का वातावरण शान्त हो गया।

12. जब मुहम्मद तुगलक गुजरात में था, तो विदेशी अमीरों ने अपनी स्थिति पुनः प्राप्त करने की प्रभावशाली योजनाएँ बनाईं और उन्होंने देवगिरि का किला घेर लिया। उस पर पुनः

नोट

प्रभाव जमाने के लिए साम्राज्यवादियों की सारी योजनाएँ असफल रहीं। हसन गंगू ने इमाद-उल-मुल्क को हरा दिया और विद्रोहियों ने दौलताबाद पर कब्जा कर लिया। इस्माइल मुल्क, जिसे विद्रोहियों ने अपना राजा चुन लिया था, ने "ऐच्छिक एवं प्रसन्न रूप से" हसन गंगू के पक्ष में त्यागपत्र दे दिया। अगस्त 1347 ई. में हसन ने अलाउद्दीन बहमन शाह की उपाधि ग्रहण कर ली और बहमनी राज्य की नींव डाली।

13. तगी ने सिन्ध में शरण ली थी और मुहम्मद तुगलक ने उसके विरुद्ध बढ़ने का निश्चय किया था, परन्तु मार्ग में सुल्तान बीमार पड़ गया और इसलिए गोंडल पर कुछ समय के लिए रुकने पर विवश हो गया। कुछ दशा सुधरने पर वह सिन्ध में थट्टा की ओर बढ़ा। उस स्थान से 3 या 4 दिन तक बढ़ते ही उसकी दशा गंभीर हो गई और 20 मार्च 1351 ई. को उसका देहांत हो गया। बदायूनी इस प्रकार कहता है–"और इस प्रकार राजा को अपनी जनता से व जनता को अपने राजा से मुक्ति मिल गई।"

डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "उन अमीरों की ओर जो उसके डेरे में भीड़ लगाए रहते थे, वह अपनी डगमगाती हुई शक्ति को रोकने के लिए सहायता के हेतु देखता था, किन्तु वे सब बिना किसी योजना या नीति के अल्पबुद्धि वाले थे और उसे केवल बहुत थोड़ी-सी सहायता दे सकते थे। जिस वस्तु ने उसे गम्भीरता के साथ रोका वह चीज उन योग्य शासकों व अधिकारियों की कमी थी जो उसकी योजनाओं को लागू कर सकते। मुख्य स्थान पर मनुष्य की अकुशलता ने व्यक्तित्व के तत्व को इस सीमा तक महत्त्व प्रदान किया कि गड़बड़ वाले क्षेत्रों में व्यवस्था बनाए रखने के लिए सुल्तान की उपस्थिति आवश्यक हो गई। निरन्तर विरोध व कुप्रबंधों से प्रभावित स्थानीय शासन प्रबंध उन विद्रोहियों के सामने न ठहर सके जिनकी शक्ति रोज बढ़ रही थी। अशान्ति की शक्तियों पर प्रतिबंध लगाने में गुजरात या देवगिरि कहीं का भी स्थानीय शासन प्रबंध कोई उत्साह न दिखा सका। केवल सुल्तान ही को आक्रमणों की मुख्य चोट का मुकाबला करना पड़ा। राजसी सेना भी कोई विशेष कुशलता न दिखा सकी। शायद सुल्तान की असाधारण कठोरताओं ने उसका संतोष समाप्त कर दिया था और उसका उत्साह ठंडा कर दिया था।"

मुहम्मद तुगलक का चरित्र व मूल्यांकन (Character and Estimate)

मुहम्मद तुगलक के चरित्र व सफलताओं के विषय में बहुत विवाद है। एल्फिंसटन का यह मत है कि मुहम्मद तुगलक पर थोड़ा बहुत पागलपन का भी प्रभाव था। कुछ लेखक जैसे हेवल, एडवर्ड टामस और स्मिथ उसी के इस विचार का अनुसरण करते हैं। गारडिनर ब्राउन (Gardiner Brown) ने मुहम्मद तुगलक के जीवन के बुरे पहलू को बिल्कुल छोड़ दिया है और उसे 'पागल', 'खून का प्यासा' या 'स्वप्न देखने वाला' होने से मुक्त किया है। जियाउद्दीन बारानी व इब्नबतूता मुहम्मद

तुगलक के व्यक्तित्व में गुणों व दोषों के विषय में विपरीत मत रखते हैं। यह विवाद हमेशा से ऐसा ही जीवित रहा है।

नोट

मुहम्मद तुगलक अपने समय के योग्य एवं होनहार विद्वानों में से एक था और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उसके समकालीन लोगों ने उसकी प्रशंसा की है। वह एक तीक्ष्ण बुद्धि व आश्चर्यजनक स्मरण शक्ति रखता था। वह तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र, गणितशास्त्र, ज्योतिष व भौतिक विज्ञान जानता था। वह रचना व शैली का पूर्ण स्वामी था। वह एक योग्य व सुन्दर लेखक था। उसे फारसी कविता का बहुत अच्छा ज्ञान था और अपने पत्रों में फारसी कविताओं के कुछ भाग लिखने में उसे बड़ा आनंद आता था। उसे औषधियों का ज्ञान था और वह विवादों में बहुत कुशल था। उपमाओं व अलंकारों के प्रयोग में वह बहुत दक्ष था। जियाउद्दीन बारानी उसे एक योग्य विद्वान बताता है और सृष्टि का ऐसा महान् आश्चर्य समझता है जिसकी योग्यताएँ अरस्तू व आसफ जैसे मनुष्य को आश्चर्य में डाल सकती थीं। वह उदार स्वभाव का था। वह उन सब को बहुत उपहार देता था जो हर समय उसके द्वारों पर भीड़ लगाए रहते थे। उसकी आदतें साधारण थीं। वह अपने समय की प्रचलित बुराइयों से मुक्त था। इब्नबतूता ने उसे "सबसे ज्यादा नम्र व ऐसा मनुष्य जो सदा ठीक व सच्चा काम करने के लिए तत्पर व उत्सुक रहने वाला था" बताया है। बरनी, याहिया-बिन-अहमद सरहिन्दी, बदायूनी, निजामुद्दीन व फरिश्ता ने यह गलत बताया है कि मुहम्मद तुगलक एक धार्मिक व्यक्ति न था और वह पवित्र तथा योग्य मनुष्यों के हत्याकांड के लिए उत्तरदायी भी था। इब्नबतूता प्रत्यक्षत: यह स्वीकार करता है कि "वह (मुहम्मद तुगलक) निष्ठा के साथ धार्मिक सिद्धांत का अनुसरण करता है। स्वयं प्रार्थनाएँ करता है और उन मनुष्यों को दण्ड देता है जो पूजा से उदासीन रहते हैं। दो अन्य समकालीन लेखक शहाबुद्दीन अहमद और उन-बदरे-छाछ भी इब्नबतूता के मत की पुष्टि करते हैं। यह पता चलता है कि मुहम्मद तुगलक की एकमात्र गलती यह थी कि "उसने उस परम्परागत नियम" के प्रति उदासीनता की जिसकी व्याख्या काजी व अन्य मुस्लिम उलेमा करते थे और उसने वही किया जिसे स्वयं ठीक व न्यायसंगत समझा।

मुहम्मद तुगलक की कल्पना शक्ति बहुत तीव्र थी किन्तु उसके पास व्यावहारिक न्याय व सामान्य बुद्धि का अभाव था। वह तेज काम करने वाला व गरम स्वभाव का था। वह किसी ओर से विरोध सहन नहीं कर सकता था और उन सब को दण्ड देने के लिए तैयार रहता था जो उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने या उससे असहमत होने का साहस करते थे। जियाउद्दीन बारानी के अनुसार, "उसने जो कुछ सोचा, उसने अच्छा सोचा, परन्तु अपनी योजना को लागू करने में उसने अपने प्रदेशों तक को खो दिया, अपनी जनता को असंतुष्ट कर दिया और अपना कोष खाली कर दिया। विस्मय के बाद विस्मय आया और इसलिए गड़बड़ चरम सीमा पर पहुँच गई। लोगों की कुभावनाओं

नोट

ने विद्रोह के फूटने को जन्म दिया। शाही योजनाओं को लागू करने में नियम दिन प्रतिदिन अधिक शोषणात्मक होने लगे। बहुत दूर के देशों व प्रांतों के कर जाते रहे और बहुत से सैनिक व नौकर तितर-बितर हो गए तथा दूर के स्थानों में छोड़ दिए गए। कोष में अभाव दिखाई देने लगा। सुल्तान के मस्तिष्क का संतुलन खत्म हो गया। अपने स्वभाव की चरम दुर्बलता व कठोरता में आकर उसने अपने को अत्याचार के प्रति समर्पित कर दिया। जब उसने देखा कि उसके आदेश ठीक नहीं चल रहे हैं, जैसा कि वह चाहता था, तो वह अपनी जनता के प्रति और भी अधिक रुष्ट हो गया।"

मुहम्मद तुगलक ने बरनी से कहा, "मेरा राज्य रोगी है और कोई भी औषधि उसे ठीक नहीं करती। वैद्य सिर का दर्द ठीक करता है परन्तु ज्वर आ जाता है; वह ज्वर दूर करने की चेष्टा करता है तो कुछ अन्य रोग निकल पड़ता है। इसलिए मेरे राज्य में अशान्ति फूट पड़ी है; यदि मैं एक स्थान पर उसे दबाता हूँ वह दूसरे स्थान पर उठ जाती है; यदि मैं फिर, उसे एक जिले में रोकता हूँ, तो दूसरे जिले में गड़बड़ हो जाती है। फिर मैं संदेह या कल्पना पर उनके विद्रोहात्मक व प्रपंचात्मक कार्यों के विरुद्ध दण्ड देने के लिए आगे बढ़ता हूँ और मैं छोटे-छोटे अपराध तक पर मृत्यु दण्ड देता हूँ। यह मैं तब करूँगा जब तक जीवित रहूँगा या जब तक लोग ईमानदारी से काम नहीं करते या विद्रोह व आज्ञोल्लंघन नहीं छोड़ देते। मेरे पास ऐसा कोई वजीर नहीं है जो मेरे निकलते हुए रक्त को दिखाने के लिए नियम बनायेगा। मैं मनुष्यों को दण्ड देता हूँ क्योंकि वे मेरे बिल्कुल विरोधी व शत्रु बन बैठे हैं। मैंने उनके बीच बड़ा धन वितरित किया है, किन्तु वे फिर भी कर्तव्य परायण व मित्र न हो सके।" फिर विद्रोहों के लिए मेरा उपाय तलवार है। मैं दण्ड देता हूँ व तलवार का प्रयोग करता हूँ जिससे कष्टों द्वारा सुधार हो सके। जितना अधिक लोग विरोध करते हैं; उतना ही अधिक मैं दण्ड देता हूँ।"

मुहम्मद तुगलक को "विपरीतताओं का मिश्रण" (a mixture of opposites) बताया गया है। यदि उसके अपने गुण थे, तो कुछ दोष भी थे। जहाँ वह उदार, दयालु व नम्र था वहाँ बहुत क्रूर भी था। जहाँ वह अपने पास आने वाले सब लोगों को उपहार देता था, वहाँ बहुतों की मृत्यु के लिए उत्तरदायी भी था। सुल्तान का स्वभाव ऐसा था कि कोई विश्वास के साथ यह नहीं कह सकता था कि उसे क्या मिलेगा। यह संभव था कि उसे दान के रूप में कुछ मिल जाये। यह भी उतना ही सम्भव था कि उसको फाँसी मिल जाये। वह लोगों की भावनाओं की चिन्ता नहीं करता था। उसके पास मस्तिष्क का संतुलन या संतोष नहीं था।

मुहम्मद तुगलक को विपरीतताओं का विचित्र मिश्रण (an amazing compound of contradictions) भी कहा गया है। डॉ. ईश्वरी प्रसाद का मत है कि उस पर खून का प्यासा व

पागल होने के दोष अधिकतर निराधार हैं। किसी भी समकालीन लेखक ने ऐसा कोई विवरण नहीं दिया है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि मुहम्मद तुगलक विक्षिप्त या पागल था। यह सम्भव है कि ऐल्फिंस्टन व अन्य यूरोपीय लेखक इब्नबतूता के इस विवरण को गलत समझ बैठे कि कुछ मृतक शरीर सुल्तान के महल के बाहर सदा पड़े रहते थे। यदि वह छोटे से अपराध पर मृत्यु दण्ड का आदेश देता था तो इसका कारण यह था कि उसे अनुपात का कोई ज्ञान नहीं था और इसलिए भी कि उस समय यूरोप व एशिया में ऐसा रिवाज प्रचलित था। धार्मिक वर्ग के सदस्यों ने ही उस पर खून का प्यासा होने का दोष लगाया है। बारानी भी सुल्तान की इस बुद्धि की निन्दा करता है। वह उसकी दार्शनिक कल्पनाओं की बहुत तीव्र भाषा में आलोचना करता है। ऐसी कोई वस्तु देखने में नहीं आती कि सुल्तान को मनुष्य जाति के संहार करने या संगठित मनुष्यों का शिकार करने में आंनद आता था। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "सत्य यह है कि सुल्तान ने अपने कमजोर स्वभाव व प्रशासकीय सुधारों के पूर्वगामी आदर्शों का मिश्रण कर दिया, जब लोगों ने उसकी इच्छाओं के अनुसार कार्य करने में असमर्थता प्रकट की, तो उसका क्रोध भयानक हो गया। उसका असंतोष लोक-उदासीनता का फल था, जिस प्रकार लोक उदासीनता उसकी विस्मयात्मक नवीनताओं का परिणाम थी।" (Medieval India, p. 272)।

गार्डिनर ब्राउन के अनुसार, "वह पागल था, यह ऐसा विचार है कि जिसका समकालीन लोग कोई संकेत नहीं देते हैं। यह कि वह एक स्वप्न-दर्शक था तो उसका बहुरूपी व्यावहारिक व तेजपूर्ण चरित्र हमें ऐसा विश्वास करने से रोकता है। उसे एक निरंकुश शासक मानना सच हो सकता है, परन्तु मध्य युग में और किसी प्रकार का शासन कल्पना-योग्य भी नहीं था। इस शब्द का इस प्रकार प्रयोग करना जैसे कि वह किसी बीमारी या बुराई का नाम है तो उसका आशय उस तत्व को भूल जाना है कि एक निरंकुश राजकुमार जो नए विचारों तक पहुँच सकता है या जो सुधार के उपाय करता है, वह ऐसे युग में अपने मनुष्यों की समृद्धि के लिए बहुत कुछ कर सकता है जबकि शिक्षा की इतनी कम प्रगति हुई हो और रूढ़िवाद इतना गहरा हो। ऐसे शासक को फिर भी, अपने समय में मुकाबला करने के लिए गंभीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है : स्वार्थी हितों की अनिवार्य उथल-पुथल, स्थापित परम्परा के लिए सहज लगाव उसके लिए अगणित शत्रुओं की उत्पत्ति करते हैं। अलोकप्रिय सुधारों को लागू करने वाले अधिकारी स्वामी के आदेशों का बहाना कर अपनी जान बचा लेते हैं। यदि उसकी योजनाओं पर बिना वजह आपत्ति आ पड़े या बुरे व अकुशल अधिकारी अपने स्वार्थों के लिए भ्रष्ट हो जाएँ, तो वह सब इस कारण है कि वह एक निरंकुश शासक है और इसलिए उसे यह दोष अपने जिम्मे लेना चाहिए। यदि वह एक योद्धा रहा है और मृत्यु उसका वरण करती है जबकि वह थट्टा की दीवारों के नीचे मुहम्मद बिन

नोट

तुगलक की भाँति किसी छोटे से संग्राम में फँसा हुआ है, तो स्वर्ग का निर्णय उस लोकप्रिय निर्णय की पुष्टि करता हुआ मालूम होता है और साहित्य यह कहता है–

उसने ऐसा नाम छोड़ा जिस पर विश्व पीला पड़ गया,

एक शिक्षा देने या कहानी सजाने के वास्ते।

लेनपूल के अनुसार, "मुहम्मद तुगलक मध्य युग का सबसे अधिक विलक्षण जीव था। वह ऐसा मनुष्य था जिसके विचार अपने समय से बहुत आगे थे। अपने शासन की समस्याओं का भार उठाने के लिए अलाउद्दीन के पास एक तेजस्वी किन्तु बन्द मस्तिष्क था; मुहम्मद तुगलक अपनी योजनाओं में अधिक साहसी था, परन्तु वे विचार एक प्रशिक्षित बुद्धि तथा शिक्षित कल्पना वाले मनुष्य के आदर्श थे। वह अपने समय की मान्यताओं में पूर्ण, फारसी कविता का योग्य विद्यार्थी, भारतीय शिक्षा की लातिनी शैली का उस्ताद; अलंकार के युग में सर्वश्रेष्ठ रूप से अभिभावक, यूनानी तर्कशास्त्र व वेदान्तशास्त्र में प्रशिक्षण-प्राप्त था जिससे विद्वान भी विवाद करते डरते थे। वह गणित तथा विज्ञान का प्रेमी था। समकालीन लेखक उसकी रचना तथा विचित्र सुन्दर-लिपि की अगाध प्रशंसा करते हैं। उसकी सुन्दर मुद्रा यह प्रमाणित करती है कि अरब के चरित्र को अपनाने की कला में उसका समालोचनात्मक चाव था, जिसे वह पढ़ता व समझता था हालांकि वह भाषा को तेजी के साथ बोल सकता था।"

"संक्षेप में, वह उस सब में सम्पूर्ण था जो उस युग व उस देश में संस्कृति द्वारा प्राप्त हो सकता था, उसने अपने प्रशिक्षण की सफाई में मौलिक विचार का एक प्राकृतिक ज्ञान, एक आश्चर्यजनक स्मरण शक्ति और एक अडिग इच्छा का योग कर दिया। उसका केन्द्रीय राजधानी का विचार, उसकी सांकेतिक सिक्के की योजना, उसकी अन्य बहुत-सी योजनाओं की भाँति अच्छी थी। परन्तु उसने अपनी नवीनताओं के लिए देशी नापसंदी पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसने बिना संतोष के अपने नए उपायों को लागू करने में जल्दी की, जिससे कि लोग उसे धीरे-धीरे अपना सकें, जब वे असंतुष्ट हो गए और उन्होंने विद्रोह किया तो उसने उन्हें निर्दयता के साथ सजा दी। उसे जो अच्छा प्रतीत हुआ, उसे फौरन किया जाने का आदेश मिला और जब वह असफल या असंभव प्रतीत हुआ, तो उसकी निराशा रोष की सीमा पर पहुँच गई और उसने अपना क्रोध बिना कोई भेदभाव किए उन अप्रसन्न अपराधियों पर उतारा जो उसकी कल्पना के साथ न चल सके। अत: अपने सर्वोत्तम संकल्पों, उत्तम विचारों एवं संतोष के संतुलन बिना, अनुपात का कोई ध्यान न करते हुए, मुहम्मद तुगलक को सम्पूर्ण विफलता प्राप्त हुई। उसका शासन ऐसा था जिसमें विद्रोहों का एक लम्बा सिलसिला चलता रहा जिन्हें उसने बर्बरतापूर्वक दबाया। उसकी प्रजा, जिसे वह लाभ

पहुँचाना चाहता था और जिस पर उसने अपरा कोष लुटाया, उससे अप्रसन्न होने लगी, उसकी सारी योजनाएँ निरर्थक हो गईं और जब सिन्ध नदी के किनारे 26 वर्ष बाद उसका देहान्त हुआ, तो उसने एक टूटा-फूटा साम्राज्य और एक लुटी हुई व विद्रोही प्रजा छोड़ी।" (Medieval India, p. 86-87)

नोट

सर वुल्जले हेग के अनुसार, "मुहम्मद तुगलक जैसे विषम व प्रतिकूल चरित्र को अंकित करना कोई सरल कार्य नहीं है। वह उन असाधारण राजाओं में से था जो कभी गद्दी पर बैठे। अपनी बहुत अपव्ययी उदारता में उसने विद्रोहमयी तथा अविवेकपूर्ण निर्दयता का संयोग कर दिया; उसने इस्लाम के कानून द्वारा निर्धारित रीति व संस्कारों को स्वीकार किया परन्तु समस्त सार्वजनिक मामलों में उनका बिल्कुल पालन नहीं किया, उसने उन सब के लिए एक अन्धविश्वासी सम्मान दिया जिनकी जाति या जिनकी पवित्रता का आदर किया जाता था, परन्तु जब उसका रोष जाग्रत हो जाता था तब वह व्यक्तिगत पावनता या पुरोहित (उल्मा) के रक्त तक का सम्मान न करता था। उसके कुछ प्रशासकीय व अन्य सैनिक उपाय उसकी सर्वश्रेष्ठ योग्यता का प्रमाण देते हैं, शेष कार्य किसी पागल जैसे मनुष्य के हैं। उसका संरक्षणाधीन विद्वान जियाउद्दीन बारानी, इतिहासकार जिसके साथ उसने काफी सीमा तक घनिष्ठता स्वीकार की और जिससे उसने प्राय: परामर्श लिया, वह बहुत से ऐसे अत्याचारों का वर्णन करता है जिनकी स्वीकृति या जिनके आदेश सुल्तान ने 12 दुष्ट परामर्शदाताओं के कुप्रभाव के कारण जारी किए, वह सुल्तान को 'दयनीय', 'अभिशप्त' या सबसे 'अधिक अभिशप्त' से दोषारोपित करता है, जिसको मुसलमानों का रक्त प्रवाहित करने में आनंद आता था। परन्तु मुहम्मद तुगलक कोई दुर्बल व्यक्ति नहीं था और अपने परामर्शदाताओं के हाथ में कभी कठपुतली बन कर नहीं रहा। यदि उसके परामर्शदाता दूषित व रक्त के प्यासे थे तो वही उनका चुनाव करता था, यदि वह बुरे परामर्शों का अनुसरण करता था, तो वह इसलिए करता था क्योंकि वे उसके द्वारा प्रशंसित होते रहते।

इसी भाँति बारानी बताता है कि आदि काल में अपना सम्पर्क साद काफिर, तर्काचार्य उबैद, अभक्तिपूर्ण कवि अलीमुद्दीन दार्शनिक से रखने के कारण प्रशासकीय व दण्ड सम्बन्धी कार्यों में वह इस्लाम के कानून के प्रति उदासीनता रख लेता था, किन्तु यह केवल विशेष दलील है। उसके इन स्वतंत्र विचार वालों के साथ सम्पर्क ने इस्लाम में उसके विश्वास को कम नहीं किया, और इससे अन्य क्षेत्रों में कानूनों के प्रति उसके ज्ञानपूर्ण सम्मान या उसकी परम्पराओं के आदर में कोई कमी न आ सकी। यह तर्काचार्यों, कवियों या दार्शनिकों का दोष नहीं है कि उसने अपनी अभिरुचि को स्पष्ट रूप से बिना खोले हुए सांसारिक विषयों में दैवी स्पष्टीकरण के क्षेत्र में मानवीय विवेक को जान बूझकर पसंद किया और इस प्रकार रूढ़िवाद को ठुकरा दिया। उसके निजी निर्णय ने

नोट

उसको गलत मार्ग दिखाया, परन्तु यह उसकी प्रवृत्ति के कारण था। एक न्यायकर्ता व प्रशासक के नाते उसका विशेष दोष यह था कि उसमें अपरिमित गर्व था जिसने उसे अपराधों के बीच अन्तर निकालने की शक्ति से वंचित कर रखा था।

उसके सारे आदेश पवित्र होते थे और एक अव्यावहारिक निर्देश से तनिक भी हटाव और विद्रोह या आज्ञा न मानने का गंभीर अपराध सभी का एक दण्ड था–निर्दयता के साथ मृत्यु दण्ड। इस नीति ने राजा तथा प्रजा पर सामूहिक रूप से प्रभाव डाला व साथ ही उसकी प्रतिक्रिया भी चलती रही। अपने सार्वभौम शासक की बर्बरता से तंग आकर वे और भी अधिक प्रतिक्रियावादी बन गए। उनकी आज्ञावहेलना से चिढ़कर वह और भी रुष्ट हो गया। उसके शासन काल में उसका विशाल साम्राज्य बहुत कम समयों पर उपद्रवों से मुक्त रहा और उसकी मृत्यु पर सारा राज्य उथल-पुथल में आ फँसा।

"बरनी, उसके उपकारों व भयों का विचार न करते हुए, आश्चर्य के साथ ऐसा विवरण देता है। वह कहता है कि सुल्तान का गर्व इतना अपरिमित था कि वह यह सुनना सहन नहीं कर सकता था कि इस पृथ्वी का कोई कोना,

यहाँ तक कि आकाश तक का कोई कोना, उसकी सत्ता के अधीन नहीं है। एक ही समय पर वह सुलेमान व सिकन्दर दोनों ही था; वह केवल राजपद से ही संतुष्ट नहीं था क्योंकि वह धार्मिक पुरोहित का पद प्राप्त करने का भी इच्छुक था। उसकी यह आकांक्षा थी कि संसार की सब वस्तुओं को वह अपना दास बना ले और बरनी उसके इस गर्व को उन फरोन राजाओं व निमरोद के समान समझता है जो राजपद व दैवी-पद दोनों ही का दावा करते थे, किन्तु विधि के प्रति उसके चिन्ताजनक सम्मान तथा इस्लाम धर्म में उसके दृढ़ विश्वास ने उसके माथे से नास्तिकता तथा अनिष्ठा का कलंक हटा दिया। वह उसकी तुलना बुस्ताम के बयाजिद और मन्सूर-उल-हल्लाज के पुत्र हुसेन से करता जिन्होंने अपने भक्ति के आनंद में रत होकर यह विश्वास किया कि वे ईश्वर में अपने को मिला चुके हैं, परन्तु उसकी बर्बरतापूर्ण निर्दयता ने किसी भी पवित्रता को उसके ऐसे दावों से वंचित कर दिया।"

1.5 फिरोज तुगलक (1351-1388)

मुहम्मद तुगलक के उपरांत फिरोज तुगलक गद्दी पर बैठा। उसका जन्म 1309 ई. में हुआ व उसकी मृत्यु 1388 ई. में हुई। वह गयासुद्दीन तुगलक के छोटे भाई रजब का पुत्र था। उसकी माता भट्टी राजपूत कन्या थी जिसने अपने पिता रणमल, अबूहर के सरदार के राज्य को मुसलमानों के हाथों से नष्ट होने से बचाने के लिए रजब से विवाह करने पर सहमति प्रदान कर दी थी। जब फिरोज

बड़ा हुआ तो उसने शासन-प्रबंध व युद्ध-कला में प्रशिक्षण प्राप्त किया परन्तु वह किसी भी क्षेत्र में निपुण न बन सका। मुहम्मद तुगलक फिरोज के प्रति बहुत प्रेम रखता था और इसलिए देश के शासन-प्रबंध में उसने उसको अपने साथ ले लिया।

नोट

सिंहासनारोहण (Succession)

जब 20 मार्च, 1351 ई. को मुहम्मद तुगलक की मृत्यु हो गई, तो उस डेरे में पूर्ण अव्यवस्था व अशान्ति फैल गई जिसे सिंध के विद्रोहियों व मंगोल वेतनार्थी सैनिकों ने लूटा था व जिन्हें मुहम्मद तुगलक ने तगी के विरुद्ध संग्राम करने हेतु किराये पर रख लिया था। सिंधियों व मंगोलों ने काम तमाम कर दिया होता, परन्तु उसी समय फिरोज से गद्दी पर बैठने को कहा गया। उसने संकोच प्रकट किया, परन्तु जब कुलीन पुरुषों, शेखों व उलेमाओं ने उस पर दबाव डाला, तो वह सुल्तान बनने पर राजी हो गया। इन परिस्थितियों के अधीन ही 23 मार्च, 1351 ई. में थट्टा के निकट एक डेरे में फिरोज का सिंहासनारोहण हुआ।

फिरोज का विरोध (Opposition)

फिरोज को एक अन्य कठिनाई का सामना करना पड़ा। स्वर्गीय सुल्तान के नायब (deputy), ख्वाजा-ए-जहाँ, ने दिल्ली में एक लड़के को सुल्तान मुहम्मद तुगलक का पुत्र व उत्तराधिकारी घोषित करके गद्दी पर बिठा दिया। यह परिस्थिति गंभीर हो गई और इसलिए फिरोज ने अमीरों, सरदारों तथा मुस्लिम विधि-ज्ञाताओं (jurists) से परामर्श लिया। उन्होंने यह आपत्ति उठाई कि मुहम्मद तुगलक पुत्रहीन था। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि ख्वाजा-ए-जहाँ का अभ्यर्थी इसलिए अयोग्य है क्योंकि वह नाबालिग (Minor) है और गद्दी पर ऐसे समय नहीं बिठाया जा सकता जबकि परिस्थिति इतनी गंभीर है। यह भी कहा गया कि इस्लाम के कानून में उत्तराधिकार का कोई पैतृक अधिकार नहीं है। परिस्थितियाँ यह माँग करती हैं कि दिल्ली की गद्दी पर एक शक्तिशाली शासक होना चाहिए। जब ख्वाजा-ए-जहाँ ने अपनी स्थिति दुर्बल पाई, तो उसने आत्मसमर्पण कर दिया। उसकी पुरानी सेवाओं को देखते हुए फिरोज ने उसको क्षमा कर दिया और उसे समाना में आश्रय लेने की अनुमति दे दी। परन्तु मार्ग में शेर खाँ, समाना के सरदार (Commandant), के किसी साथी ने उसका वध कर दिया।

विवाद (Controversy)

फिरोज तुगलक के सिंहासनारोहण के विषय में कुछ विवाद हैं। जियाउद्दीन बरनी का मत है कि मुहम्मद तुगलक ने एक आदेशपत्र (Testament) छोड़ा जिसमें उसने फिरोज तुगलक को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था परन्तु सर वुल्जले हेग ने इस आदेशपत्र की विश्वसनीयता पर संदेह किया है। उसका विचार है कि वह बालक जिसे ख्वाजा-ए-जहाँ ने गद्दी पर बिठाया वह मुहम्मद

नोट

तुगलक का कोई "काल्पनिक पुत्र" नहीं था, वरन् उसके रक्त से था। फलस्वरूप, फिरोज का सिंहासनारोहण कोई यथाक्रम वस्तु न थी और इसलिए उसे बलादग्राही (Usurper) माना जा सकता है। इसके विपरीत अन्य इतिहासकारों ने इस मत को स्वीकार नहीं किया है। यह कहा जाता है कि ऐसी कोई वस्तु नहीं मिलती है जो इस बालक को मुहम्मद तुगलक का पुत्र बता सके। यदि वह बालक मुहम्मद तुगलक का सच्चा पुत्र था भी, तो फिरोज का सिंहासनारोहण यथाक्रमहीन नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस्लाम में गद्दी के उत्तराधिकार के विषय में कोई पैतृक अधिकार नहीं था। डॉ. आर.पी. त्रिपाठी के विचारानुसार, फिरोज के सिंहासनारोहण ने "एक बार फिर बहुत बल के साथ चुनाव का अधिकार, जो पुत्र को शासन का अधिकार बिना मना किए हुए भी धीरे-धीरे पृष्ठभूमि में प्रविष्ट हो रहा था, स्पष्ट कर दिया।" फिरोज के सिंहासनारोहण ने दो और सिद्धांतों पर बल दिया। प्रथम यह कि ऐसी कोई आपत्ति नहीं उठाई जा सकती कि शासक की माता विवाह से पूर्व गैर-मुस्लिम स्त्री थी और दूसरा यह कि यह आवश्यक नहीं कि नया शासक एक प्रसिद्ध विद्वान होना चाहिए। यह ठीक कहा गया है कि फिरोज का सिंहासनारोहण "उतना ही महत्त्वपूर्ण था जितना कि रोचक।"

गृह नीति (Domestic Policy)

हम फिरोज के शासनकाल को दो भागों में बाँट सकते हैं–गृह नीति व विदेश नीति। जहाँ तक उसकी गृह नीति का सम्बन्ध है, इस नए सुल्तान का तत्कालीन कार्य जनता को अपनी ओर आकृष्ट करना था। यह कार्य उसने जनता पर राज्य के समस्त ऋणों को क्षमा करके तथा कोई ऐसी चेष्टा न करके सम्पन्न किया, जिसका तात्पर्य उस कोष का पुनः उगाहना हो जो ख्वाजा-ए-जहाँ ने अपने अभ्यर्थी को गद्दी पर बिठाते समय जनता में बाँट दिया था। अपने शासन काल के प्रथम वर्ष में फिरोज ने अपना सारा समय अपने राज्य में व्यवस्था व शान्ति स्थापित करने में व्यतीत किया। नए सुल्तान ने अपने सामने जन-कल्याण का आदर्श रखा और उसने वे सब कार्य किए, जो उनके भौतिक कल्याण व जीवन के सुख हेतु संभव रूप से कर सकता था। उसने विभिन्न क्षेत्रों में बहुत से सुधारों का प्रचलन किया और इस प्रकार सैनिक क्षेत्र में अपनी अयोग्यता के होते हुए भी उसने जनता की सहृदयता प्राप्त कर ली।

राजस्व नीति (Revenue Policy)

जब फिरोज तुगलक गद्दी पर बैठा उस समय राजस्व प्रशासन में पूर्ण अस्तव्यस्तता थी। उसने केवल उन्हीं तकावी ऋणों को रद्द नहीं किया जिन्हें मुहम्मद तुगलक के शासन काल में दिया गया था बल्कि उसने यह भी आदेश जारी किए कि राज्य के अधिकारी कृषकों को आतंकित न करें। उसने राजस्व विभाग के अधिकारियों के वेतन बढ़ा दिए। ख्वाजा हिसामुद्दीन को राज्य के सार्वजनिक

नोट

राजस्व के अनुमान बनाने का कार्य सौंपा गया और इस काम को ख्वाजा ने 6 वर्षों में पूरा किया। उसने केवल प्रांतों का दौरा ही नहीं किया, वरन् राजस्व अभिलेखों का परीक्षण भी किया। फलतः उसने अपने राज्य की खालसा भूमि की मालगुजारी 6 करोड़ 85 लाख टंके निश्चित कर दी। यह विषय वर्णनीय है कि यह अनुमान भूमि के वास्तविक माप पर आश्रित नहीं था, अपितु यह स्थानीय सूचना पर आश्रित था और यह काम चलाने के लिए अच्छा अनुमान था।

सुल्तान ने 24 ऐसे विवादग्रस्त व अन्यायसंगत महसूलों (cesses) का उन्मूलन कर दिया, जो पिछले शासन कालों से लागू हुए चले आ रहे थे। राज्य का मालगुजारी में भाग भी घटा दिया गया। उसने उन उपहारों की प्रथा का अन्त कर दिया, जो कि राज्यपालों से उनकी नियुक्ति के समय लिए जाते थे और वह धनराशि लेना बंद कर दी जो उन्हें हर वर्ष देनी पड़ती थी। ऐसे महसूलों को प्रांताध्यक्ष वास्तव में जनता से वसूल करते थे। करों की नयी व्यवस्था कुरान के अनुसार थी। कुरान द्वारा स्वीकृत चार प्रकार के कर लगाए गए थे और वे थे खिराज, जकात, जजिया और खम्स। खिराज वह भूमि कर था जो भूमि की उपज के भाग के बराबर था, जकात वह 2-1/2% कर था जो मुसलमानों से सम्पत्ति पर लिया जाता था और विशिष्ट रूप से धार्मिक कार्यों पर ही व्यय किया जाता था। जजिया गैर-मुसलमानों तथा काफिरों पर लगाया जाने वाला कर था। परन्तु जजिया का क्षेत्र फिरोज ने बढ़ा दिया और उन ब्राह्मणों तक पर लागू कर दिया जो पहले इससे मुक्त थे। यह बताया जाता है कि जब जजिया ब्राह्मणों पर लगाया गया था, तो उन्होंने उसका महल घेर लिया और उन्होंने अपने पुराने विशेषाधिकार के विरुद्ध आक्रमण पर प्रतिवाद स्पष्ट किया। उन्होंने अपने को जिन्दा जला लेने व सुल्तान पर दैवी कोप घटित होने की धमकी भी दी। सुल्तान ने यह उत्तर दिया कि वे यथासंभव व शीघ्रातिशीघ्र अपनी इच्छानुसार जलकर मर सकते हैं। फल यह हुआ कि अपने को जीवित जलाने की अपेक्षा वे सुल्तान के द्वार पर भूखे बैठ गये। सुल्तान इससे सहमत नहीं हुआ इसलिए उसने ऐसी व्यवस्था की कि ब्राह्मणों पर लागू किया जाने वाला कर हिन्दुओं की छोटी जातियों पर उन करों के अतिरिक्त जिसके लिए वे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी थे, लगा दिया जाये। खम्स युद्ध में प्राप्त वस्तु का पाँचवां भाग होता था। अलाउद्दीन व मुहम्मद तुगलक लुटे हुए धन का केवल 4/5 भाग लेकर 1/5 भाग छोड़ते थे। फिरोज ने इस्लाम के नियम का अनुसरण किया, जिसके अनुसार राज्य को केवल 1/5 भाग लेने व 4/5 भाग छोड़ने का अधिकार था क्योंकि वह भाग सैनिकों का था। धर्मशास्त्रियों के परामर्शानुसार सुल्तान ने खेतों की उपज पर 10% सिंचाई कर लगा दिया। व्यापारियों को उन अनुचित व अत्याचारी चुंगी-करों से मुक्त कर दिया गया, जो उन्हें देश के एक भाग से दूसरे भाग में वस्तुओं के स्वतंत्र प्रचलन को रोकते थे। मालगुजारी के उगाहने वालों को यह चेतावनी दी गई कि उनको कठोरता के साथ दण्ड दिया जायेगा यदि उन्होंने जनता से निर्धारित शुल्कों से अधिक उगाही की।

नोट

फिरोज के इन सुधारों का परिणाम यह हुआ कि वह अपने कोष में बहुत-सा धन रखने योग्य हो सका। उसकी बृहत मालगुजारियों का कारण उत्तम फसलों की उपज की सुधरी हुई विशेषता, जल कर तथा उद्योगों द्वारा आय थी। उद्योगों द्वारा 1,80,000 टंके की वार्षिक आय होती थी। सुल्तान की अर्थ नीति ने जन-समृद्धि में काफी योगदान दिया। शम्से-सिराज अफीफ हमें बताता है कि "उनके घर अनाज, सम्पत्ति, घोड़ों व काष्ठ-वस्तुओं से भरपूर थे। प्रत्येक के पास सोना व चाँदी प्रचुर मात्रा में थी; कोई स्त्री आभूषणहीन नहीं थी और कोई भी मकान अच्छे बिस्तरों व दीवानों से खाली नहीं था। धन की अधिकता थी और सुख सामान्य थे। उसके शासनकाल में राज्य को आर्थिक रिक्तता का सामना न करना पड़ा। दोआब से होने वाली मालगुजारी 80 लाख टंके व दिल्ली के प्रदेश से होने वाली मालगुजारी 6 करोड़ 85 लाख टंके थी।" फिर, "ईश्वर व पक्ष में होने वाली ऋतु की कृपा से केवल राजधानी में ही नहीं वरन् उसके सारे राज्य में जीवन सम्बन्धी आवश्यक वस्तुओं की प्रचुरता का प्रचलन हो गया.....अनाज इतना सस्ता था कि दिल्ली के नगर में गेहूँ 8 जीतल प्रति मन व जौ ज्वार आदि 4 जीतल प्रति मन थे। डेरे का एक व्यक्ति अपने घोड़े को 1 जीतल में 10 सेर (20 पौंड) का खाना दे सकता था। सब प्रकार के वस्त्र सस्ते थे और सफेद व रंगीन दोनों ही प्रकार के सिल्क के कपड़े साधारण मूल्य के थे। मूल्य के सामान्य गिरावट के अनुसार मिठाइयों के मूल्य घटाने के आदेश दिए गए थे।"

फिरोज की आर्थिक नीति में आलोचक कुछ दोष निकालते हैं। यह कहा जाता है कि सुल्तान ने करों के ठेके देने की व्यवस्था में प्रसार करके एक त्रुटि की। अलाउद्दीन खिलजी व मुहम्मद तुगलक ने इसका प्रबंध प्रत्यक्षत: राज्य के आधीन रखा और यथा संभव मालगुजारी वसूल करने के क्षेत्र में ठेकेदारी को अलग रखा। फिरोज तुगलक द्वारा लागू की गई व्यवस्था से राज्य को कम आय और जनता को अधिक आतंक उठाना पड़ा। फिरोज की प्रणाली में दूसरा दोष यह था कि उसने उस जागीर प्रथा को पुन: शुरू कर दिया जिसे अलाउद्दीन ने बंद कर दिया था।

शम्से-सिराज अफीफ ने इस व्यवस्था की इस प्रकार परिभाषा दी है–"सेना के सैनिक भूमि के अनुदान (जागीर) प्राप्त करते थे जो उन्हें सुख व आराम के लिए पर्याप्त होती थी और वे अनियमित रूप से राज्य कोष से अनुदान प्राप्त करते थे। वे सैनिक जो इस प्रकार अपना वेतन प्राप्त नहीं करते थे तो उन्हें उनकी आवश्यकतानुसार मालगुजारी सम्बन्धी कार्य समर्पित कर दिए जाते थे। जब सैनिकों के ये दत्तकार्य सामन्त-सम्पत्ति के रूप में आ जाते थे, तो धारकों को जागीरों के धारकों से कुल मात्रा का लगभग आधा भाग मिला करता था। उन दिनों में कुछ व्यक्तियों का कार्य इन दत्त कार्यों को खरीद लेना था जिससे दोनों पक्षों को गुंजायश हो जाती थी। वे उनके बदले में नगर में मूल्य का 1/3 भाग देते थे और जिलों में आधार भाग प्राप्त करते थे। इन दत्त कार्यों के

क्रेतागण ऐसा क्रय-विक्रय चलाते रहते थे और अच्छा लाभ प्राप्त करके बहुत से लोग धनी हो गए तथा उन्होंने अपने भाग्य बना लिए।" दूसरा दोष जजिया के क्षेत्र का विस्तार तथा उसके उगाहने में कठोरता का बरता जाना था। सुल्तान ने ब्राह्मणों को "अभक्तिपूर्णता का दुर्ग" समझा और इसलिए वह उन्हें मुक्त करने पर तैयार नहीं था।

नोट

सिंचाई (Irrigation)

कृषि को प्रोत्साहन देने के लिए, सुल्तान ने सिंचाई की ओर बहुत ध्यान दिया। शम्से-सिराज अफीफ हमें बताता है कि सुल्तान के आदेशों से दो नहरें खोदी गई थीं। उनमें से एक सतलुज में से और दूसरी यमुना में से निकाली गई थी। परन्तु यहिया फिरोज तुगलक के शासन काल में चार नहरों के खोदे जाने का वर्णन देता है। प्रथम नहर सतलुज से घग्घर तक थी। यह 96 मील लम्बी थी। दूसरी नहर 150 मील लम्बी थी और यह यमुना के पानी हो हिसार तक ले जाती थी। तीसरी नहर मंडवी और सिरमौर पहाड़ियों के पास से निकलती थी और उसे हाँसी से जोड़ देती थी। हाँसी से यह अरासानी जाती थी जहाँ हिसार फिरोजाबाद के दुर्ग की नींव रखी हुई थी। चौथी नहर सुरसुती के दुर्ग के निकट घग्घर से हीरानीखेरा के गाँव तक बहती थी। आज भी इन नहरों के कुछ अवशेष देखे जा सकते हैं। इन नहरों के निरीक्षण करने व इस सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट देने के लिए कुशल कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की गई थी। यात्रियों के प्रयोग के लिए व सिंचाई कार्यों हेतु 150 कुएँ फिरोज तुगलक के शासन काल में खोदे गये थे। यह बताया जाता है कि सुल्तान द्वारा सिंचाई की सुविधाओं के फलस्वरूप केवल दोआब में 52 बस्तियों का उदय हुआ। उत्तम फसलों, जैसे गेहूँ, गन्ना इत्यादि की उपज हुई। फल भी बहुत मात्रा में पैदा किए गए।

सार्वजनिक निर्माण (Public Works)

फिरोज को निर्माण का सबसे अधिक चाव था। सर वुल्जले हेग यह ठीक कहते हैं कि फिरोज का निर्माण के लिए ऐसा अत्यधिक चाव रोमन सम्राट् अगस्टस के बराबर था, यदि उससे अधिक नहीं था। फिरोजाबाद (दिल्ली का आधुनिक फिरोजशाह कोटला), फतेहाबाद, हिसार, जौनपुर और फिरोजपुर (बदायूँ के निकट) उसी के द्वारा संस्थापित हुए थे। अपने बंगाल अभियानों में उसने इकदला का नया नाम आजादपुर व पंडुआ का नया नाम फिरोजाबाद रखा। सुल्तान ने 4 मस्जिदें, 30 महल, 200 कारवाँ सराय, 5 जलाशय, 5 अस्पताल, सौ मकबरे, 10 स्नानागार, 10 स्मारक स्तंभ और सौ पुल बनवाये। उसने सिंचाई के लिए 5 नहरें खुदवाईं। उसने दिल्ली के आस-पास 1200 उद्यान भी लगाए।

राज्य का मुख्य वास्तुकार (Architect) मलिक गाजी शहना था जिसे अपने कार्य में अबुल हक की सहायता मिलती थी। यह विषय वर्णन योग्य है कि प्रत्येक भवन की योजना को उसके अनुमान के साथ दीवाने विजारत के सम्मुख रखा जाता था और उन पर तभी धन स्वीकार किया जा

नोट

सकता था। इन निर्माण कार्यों के विषय में सुल्तान स्वयं यह कहता है, "उन उपहारों में जो ईश्वर ने मुझे अपने नम्र सेवक को दिए हैं, उनमें सार्वजनिक भवन निर्माण की इच्छा भी है। इसलिए मैंने बहुत-सी मस्जिदों, शिक्षालयों और बिहारों का निर्माण कराया जिससे योग्य व वृद्ध, त्यागी व पवित्र, इन भवनों में उसकी उपासना कर सकें और अपनी प्रार्थनाओं से दयालु निर्माता की सहायता कर सकें।"

डॉ. वी.ए. स्मिथ के मतानुसार, "एशियाई राजा, जैसा कि नियम है, उन भवनों में कोई रुचि नहीं रखते हैं जिनका निर्माण उनके पूर्ववर्तियों ने किया था और इसलिए साधारणतया वे भवन टूटते रहते हैं क्योंकि कोई उनकी देखरेख नहीं करता, परन्तु फिरोजशाह की विशिष्टता इसमें है कि उसने अपने पूर्ववर्ती राजाओं व कुलीन पुरुषों के भवनों की मरम्मत कराने व पुनः निर्मित कराने में बहुत ध्यान दिया और उसने अपने निर्माणों से भी अधिक महत्त्व उन भवनों को पुनः स्थापित करने में दिया।" अशोक के दो स्तंभों को मेरठ व टोपरा (अब अम्बाला जिले में) से दिल्ली लाया गया। टोपरा वाले स्तंभ को महल तथा फिरोजाबाद की मस्जिद के निकट पुनः स्थापित कराया गया। मेरठ वाले स्तंभ को दिल्ली के वर्तमान बाड़ा हिन्दू राव अस्पताल के निकट एक टीले करके शिकार या आखेट-स्थान के पास पुनः स्थापित कराया गया। शम्से-सिराज अफीफ इसकी यातायात की प्रक्रिया का इस प्रकार वर्णन देता है–"बहुत-सी बड़ी नावें इकट्ठी की गई थीं, जिनमें से कुछ 5,000 से 7,000 मन तक अनाज और कुछ 2,000 मन तक अनाज ले जा सकती थीं। स्तंभ को बड़ी चतुराई के साथ इन नावों तक लाया गया और फिर उन्हें फिरोजाबाद लाया गया, जहाँ उसे उतार लिया गया और अपार श्रम व कुशलता के साथ उसे कुशक तक पहुँचा दिया गया।"

न्याय सम्बन्धी सुधार (Judicial Reforms)

जब फिरोज गद्दी पर बैठा, उस समय देश का दण्ड सम्बन्धी नियम (penal law) बर्बरतापूर्ण था। सुल्तान ने स्वयं यह कहा कि, "पूर्ववर्ती राजाओं के शासन काल में बहुत प्रकार के दण्डों का प्रयोग किया गया। हाथों व पैरों का विच्छेद किया जाना, कानों व नाकों का काटना, आंखों का निकालना, गले में पिघला सीसा ओटा देना, हाथों व पैरों की हड्डियों को हथौड़े द्वारा तोड़ देना, शरीर को आग से जला देना, हाथों में लोहे की कीलें ठोक देना, पैरों व सीनों में कीलें छेद देना, अंग काट देना, मनुष्यों को आरे से चीर डालना, यही और ऐसे बहुत से अत्याचारों का प्रयोग होता था। महान व दयालु ईश्वर ने मुझे अपना सेवक बनाया है और आशा है कि मैं मुसलमानों का अवैध हत्याकांड रोकने और उन पर या किसी अन्य मनुष्य पर होने वाले किसी भी अत्याचार को रोकने में स्वय को अर्पित कर दूँ।" फिरोज के इन सुधारों का फल यह हुआ कि न्याय व्यवस्था में अधिक मानवता आ गई और पहले की अपेक्षा सत्य की खोज करने में केवल सताने वाले साधनों का ही उन्मूलन नहीं किया वरन् अपराधियों पर बहुत नरम दण्डों का प्रयोग किया गया। कुछ दशाओं में अपराधियों

नोट

को कोई भी दण्ड न मिला। ये दाण्डिक सुधार केवल मुसलमानों ही पर लागू नहीं हुए, वरन् उनका सम्बन्ध सब वर्गों के लोगों से था। डॉ. वी.ए. स्मिथ फिरोज तुगलक की प्रशंसा इन शब्दों में करता है, "एक सुधार, अंगच्छेदन व संताप का उन्मूलन असीमित प्रशंसा करने योग्य है और उसके जीवन काल में काफी सीमा तक आदेशों को प्रयोग में लाया गया होगा।"

फिरोज द्वारा प्रचलित अन्य सुधार यह था कि यदि कोई यात्री मार्ग में अपने प्राण देता, तो सामन्त लोगों और मुकद्दमों को यह आवश्यक था कि वे काजी व अन्य मुसलमानों को बुलायें और मृतक का शरीर परीक्षण करायें। यह भी आवश्यक था कि ऐसी रिपोर्ट बनाई जाये जो काजी की मुहर के साथ प्रमाणित करे कि उसके शरीर पर कोई घाव नहीं था। केवल तभी मृतक का अन्तिम संस्कार किया जा सकता था।

सुल्तान ने एक विवाह विभाग भी बनवाया। यह कार्य वह स्वयं करता था कि उसके धर्म की कोई भी लड़की दहेज की कमी के कारण अविवाहित न रह जाए। उसका यह विभाग मुख्यत: मध्य वर्ग के लोगों, विधवाओं, सार्वजनिक सेवाओं के संरक्षणहीनों के क्षेत्र में कार्य करता था और बहुत कुशल भी था।

सुल्तान ने एक रोजगार विभाग (Employment Bureau) भी खोला। इसका सम्बन्ध विशेषतया उन लोगों से था जो लिपिक या प्रशासन सम्बन्धी नौकरी चाहते थे। दिल्ली के कोतवाल का यह कर्तव्य था कि वह उन मनुष्यों की खोज करे जो बेकार हैं और उन्हें दरबार में पेश करे। ऐसे मनुष्यों की परिस्थितियों तथा योग्यताओं के विषय में सुल्तान स्वयं जाँच-पड़ताल करता था। उनके रुझान के अनुसार उन्हें नौकरी दी जाती थी। यह पता लगाने से कोई प्रयोजन नहीं था कि उनकी सेवाओं की कोई माँग भी थी या नहीं क्योंकि सारा काम दान की भावना से किया जाता था। इस व्यवस्था ने बहुत से बेकार युवकों की सहायता की गयी।

सुल्तान ने एक खैराती अस्पताल की स्थापना भी की जिसे दारुल शफा कहते थे। इसे योग्य वैद्यों के निरीक्षण में रखा गया था। यहाँ रोगियों को औषधियाँ व भोजन मुफ्त दिया जाता था।

शिक्षा (Learning)

सुल्तान ज्ञान के प्रसार में बहुत रुचि रखता था। वह शेखों व विद्वानों को सहायता देता था और अपने अंगूरों के महल में उनका स्वागत भी करता था। वह विद्वानों को अर्थ-सहायता भी देता था। सुल्तान को इतिहास का चाव था। जियाउद्दीन बरनी व शम्से-सिराज अफीफ ने अपनी रचनाएँ उसी के संरक्षण में तैयार कीं। उसी के शासन काल में तारीखे फिरोजशाही की रचना हुई। सुल्तान की जीवनी फतूहात-ए-फिरोज शाही के नाम से प्रसिद्ध है। जब सुल्तान ने नगरकोट पर विजय प्राप्त की, तो बहुत-सी संस्कृत पुस्तकें उसके हाथों में आईं। इनमें से 300 पुस्तकों का दलायल-ए-फिरोज शाही

नोट

के शीर्षकालीन फारसी भाषा में आज-उद्दीन खालिद द्वारा अनुवाद किया गया। बहुत से शिक्षालयों तथा विहारों की स्थापना की गई थी, जहाँ मनुष्य अपने को प्रार्थना व ध्यान में तल्लीन रखते थे। पूजा के लिए प्रत्येक कालेज के पास एक मस्जिद होती थी। इन शिक्षालयों से दो बहुत शिक्षकों का सम्बन्ध रखा गया था। इनमें से एक था मौलाना जलालुद्दीन रूमी जो धर्म विद्या तथा इस्लाम की विधि विद्या का अध्यापक था। दूसरा व्यक्ति समरकन्द का एक प्रचारक था।

दास प्रथा (Slavery)

शम्से-अफीफ हमें बताता है कि "दासों के जुटाने में सुल्तान बड़ा परिश्रमी था और वह इस कार्य को इस सीमा तक ले जाता था कि वह अपने सामंतों तथा अधिकारियों को यह आदेश देता था कि वे युद्ध के समय में दासों को पकड़ लें और उनमें से अच्छों को छाँटकर दरबार में भेज दें। वे सरदार सबसे अधिक राजसी पक्ष के भागी बनते थे जो अधिक-से-अधिक दास ला सकते थे। लगभग 12000 दास विभिन्न प्रकार के कलाकार हो गए। चालीस हजार दास सुल्तान की महल पर रक्षा करने व उसकी सेवा करने के वास्ते तैयार रहते थे। नगर तथा समस्त जागीरों में 1,80,000 दास थे, जिनकी व्यवस्था व आराम के लिए सुल्तान विशेष चिन्ता करता था। इस संस्था ने देश के केन्द्र भाग में अपनी जड़ें जमा लीं। सुल्तान इसका उचित नियमन अपना कर्तव्य समझता था। सुल्तान ने एक पृथक्-कोष, एक पृथक् जाऊ-शुगूरी (Jao Shughuri), एक सहायक जाऊ-शुगूरी और एक पृथक् दीवान स्थापित किया। दास प्रथा इस्लाम के प्रचार का सबसे सरल मार्ग था क्योंकि प्रत्येक दास इस्लाम धर्म अपना लेता था।

सेना (Army)

सेना सामंती आधार पर बनी थी। सेना के स्थायी सैनिक भूमि के अनुदान पाते थे जो उनके सुखमय जीवन के लिए पर्याप्त था। अस्थायी सैनिकों (गैर-वजह) को प्रत्यक्षत: राज्य से वेतन मिलता था। ऐसे भी सैनिक थे जो राजस्व क्षेत्र में स्थानांतरणीय कार्यों पर रखे जाते थे। इन कार्यों (Assignments) को मध्य-पुरुष राजधानी में उनके मूल्य के 1/3 भाग पर खरीद लेते थे और उन्हें जिलों में आधे मूल्य पर सिपाहियों के हाथ बेच देते थे। इस प्रकार सैनिकों के व्यय पर कुछ मनुष्यों ने लाभ कमा लिया। सुल्तान की सेना में 80,000 या 90,000 घुड़सवार थे और यह संख्या कुलीन पुरुषों द्वारा भेजे जाने वाले प्रतिधारण कर्ताओं (त्मजंपदमते) द्वारा बढ़ाई भी जा सकती थी। सेना कुशल नहीं हो सकती थी। सुल्तान ने एक नया निर्देश जारी कर दिया। यदि कोई सैनिक अपनी आयु के कारण युद्ध क्षेत्र में सेवा योग्य न रहे तो उसके स्थान पर उसके पुत्र या जामाता या दास को ले लिया जाये। प्रत्यक्षत: सैनिक सेवा में पैतृक आधार पर अधिकार एक दोषपूर्ण वस्तु थी। सुल्तान कुलीन

नोट

पुरुषों द्वारा भेजे गये प्रतिधारणकर्ताओं पर अधिक विश्वास नहीं रख सकता था क्योंकि अपनी भर्ती, पदोन्नति व अनुशासन के लिए वे अपने मालिकों की ओर देखते थे। ऊपर बतायी गई दत्तकार्यों की व्यवस्था भी दोषपूर्ण थी और यह कुशलता के अनुकूल नहीं थी। वृद्ध व अकुशल सैनिकों को सम्राट के पास तक जाने की आज्ञा नहीं थी और वह सेना की कुशलता पर उसके प्रभाव को बिना देखे हुए हस्तक्षेप कर बैठता था। घोड़ों व सैनिकों का निरीक्षण करने वाले सैनिक भ्रष्टाचारी थे और यह जानते हुए भी सुल्तान अपने कोमल हृदय के कारण उनका निष्कासन नहीं करता था। हमें यह पता चलता है कि सुल्तान ने किसी सैनिक की इस कठिनाई पर ध्यान नहीं दिया जिसका आशय दूसरे साथी से यह शिकायत करना था कि उसे निरीक्षण के लिए अपना घोड़ा पेश करने में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सुल्तान ने उस सिपाही से उसकी कठिनाई के विषय में पूछा तो उसे पता चला कि वह सिपाही अपने घोड़े को उस समय तक आगे नहीं बढ़ा सकता था जब तक कि वह निरीक्षक को एक स्वर्ण टंका न दे दे। सुल्तान ने निरीक्षक के विरुद्ध कोई दंडात्मक आदेश देने की अपेक्षा अपने पास से उस सिपाही को एक स्वर्ण टंका दिया। जिससे कि वह उस सिक्के को निरीक्षक को देकर अपना कार्य चला सके। अतः इस प्रकार, सुल्तान भी उस सामान्य भ्रष्टाचार में एक पक्ष हो गया जो शासन प्रबंध में प्रचलित था।

सिक्के (Coins)

सुल्तान ने पूर्णतया नये प्रकार के सिक्के निर्गमित नहीं किये। उसके शासन काल में भी वही सिक्के चलते रहे जो मुहम्मद तुगलक के समय से चले आ रहे थे। शम्स-ए-सिराज अफीफ (Shams-i-siraj Afif) का विचार है कि फिरोज ने शशगनी या 6 जीतल का एक सिक्का चलाया, इब्नबतूता भी ऐसे सिक्के का विवरण देता है। फिर भी यह इंकार नहीं किया जा सकता कि फिरोज ने दो सिक्के आधा (1/2 जीतल) और बिख (1/4 जीतल) जारी किए। इन सिक्कों में तांबा व चांदी मिश्रित थी और इनका आशय साधारण मनुष्यों के लेन-देन में सहायता देना था, परन्तु टकसाल के कार्य में बहुत धोखा व भ्रष्टाचार था। यह कहा जाता है कि दो सूचकों ने यह सूचना दी कि 6 जीतल वाले सिक्कों में शुद्ध मान्यता का एक दाने भर अभाव है। खाने जहाँ मकबूल, मंत्री ने कजरशाह को बुलाया (जो टकसाल का स्वामी था) और उसे ऐसी रीति ढूँढ़ निकालने का निर्देश दिया जिससे सुल्तान सिक्कों की शुद्धता के विषय में संतुष्ट हो जाये। कजरशाह ने यह प्रबंध किया कि धातु के परीक्षण से पहले ही सिक्कों को पिघला दिया जाये। वह उन सुनारों के पास भी गया जिनका कार्य राजा के सामने प्रयोग करना था और उनसे यह प्रार्थना की कि वे गोपनीयता के साथ घरिया में पर्याप्त मात्रा में चाँदी रख लें जिससे पिघलने वाली धातु शुद्धता के मान तक आ जाये। उन्होंने ऐसा करने में कठिनाई की ओर संकेत किया, परन्तु ऐसा करने की प्रतिज्ञा कर दी यदि उसके

नोट

पास चाँदी का प्रबंध हो सका। कजरशाह ने आवश्यक मात्रा में चाँदी ली और उसे उस चारकोल टुकड़े में छिपा दिया जिससे घरिया को गरम करना था और इस प्रकार बिना किसी के देखे सुनार लोग उस धातु को अपने बर्तन में लाने योग्य हो सके। जब धातु का परीक्षण किया गया, तो उसे मान्यता प्राप्त शुद्ध पाया गया। तब दोनों सूचकों को निर्वासन का दण्ड मिला तथा कजरशाह को अपनी ईमानदारी घोषित करने के उपलक्ष्य में शाही हाथी पर नगर में निकाला गया।

दरबार (Court)

सुल्तान ने एक सुन्दर व वैभवपूर्ण दरबार की व्यवस्था रखी जिसे ईद व शबरात के अवसरों पर विशेष रूप से सजाया जाता था। 36 शाही दरबार थे और प्रत्येक के पास अपने अलग अधिकारी रहते थे। इन दरबारों का व्यय वस्तुतः बहुत अधिक होगा।

धार्मिक नीति (Religious Policy)

जहाँ अन्य सुधारों के लिए फिरोज की प्रशंसा की जाती थी, धार्मिक नीति के लिए उसकी निन्दा भी की जाती है। वह एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था और उन सबकी सहायता करने को तैयार रहता था जो उसके धर्म के अनुयायी होते थे। उसने समाज व शासन में उलेमा लोगों को ऊँचा स्थान दिया। सुल्तान ने अपने आपको उनके निर्णयाधीन रखा। उसने उनके परामर्श बिना कुछ भी न किया। उसने निर्धन मुसलमानों की पुत्रियों के विवाह के प्रबंध किए। उसने शिक्षालयों व विद्यालयों की व्यवस्था की और राज्य के व्यय पर उनकी व्यवस्था चलाई। परन्तु हिन्दुओं के प्रति वह कठोर था और ऐसा व्यवहार वह अन्य मुस्लिमेतर मतावलम्बियों के प्रति भी रखता था। उसने हिन्दुओं के मन्दिरों का संहार कर दिया और "काफिरों का वध करा दिया जिन्होंने दूसरों को गलत मार्ग पर चलने का लोभ दिया।" उसने मन्दिरों के स्थान पर मस्जिदें बनवाईं। उन हिन्दुओं का उल्लेख करते हुए जो पूजा के लिए कोहाना के नए मन्दिर में एकत्रित हुए थे, सुल्तान ने इस प्रकार लिखा–"लोगों को पकड़कर मेरे सामने लाया गया। मैंने ओदश दिया कि इस दुष्टता के नेताओं का दूषित कार्य सार्वजनिक रूप से घोषित कर दिया जाना चाहिए, जिससे महल के द्वार पर आने से पहले ही उनको मृत्यु के घाट उतार दिया जाये। मैंने यह भी आदेश दिया कि उनकी पूजा में काम आने वाली पुस्तकों, मूर्तियों व बर्तनों को जिन्हें उनके साथ लाया गया है, सबके सामने जला दिया जाये। अन्य व्यक्तियों को धमकियों व दण्डों से रोक लिया गया क्योंकि सब मनुष्यों को यह चेतावनी दे दी गई कि कोई भी जिम्मी एक मुस्लिम देश में ऐसे विकट अभ्यासों का अनुसरण नहीं कर सकता।"

सुल्तान ने ज्वालामुखी मन्दिर व जगन्नाथ मन्दिरों को नष्ट कर दिया। उसने ब्राह्मणों पर जजिया कर लगा दिया। उसने एक ब्राह्मण को जीवित आग में डलवा दिया जिस पर अपने धर्म के प्रचार

नोट

का दोष लगाया गया था। कटिहार में सैय्यदों को मृत्यु के घाट उतार दिया गया। जब फिरोज को इसका समाचार मिला, तो वह स्वयं कटिहार गया और वहाँ लोगों के हत्याकांड का आदेश जारी किया। हजारों निरपराध मनुष्यों को अपने प्राण त्यागने पड़े और 23,000 मनुष्यों को बन्दी बनाकर इस्लाम धर्म की दीक्षा दे दी गई। अगले पाँच वर्षों में, सुल्तान प्रत्येक वर्ष कटिहार गया और उसने उस कहानी को लगातार दोहराया। यह अत्याचार इतना बढ़ा था कि "मृतक सैय्यदों की आत्माएँ तक उठकर मध्यस्थ का कार्य करने लगीं।" यह घटना सुल्तान का रोष प्रकट करती है जिसने उन मनुष्यों को दण्ड दिया जिन्होंने सैय्यद पर हाथ उठाने का साहस किया था।

लोगों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए सुल्तान ने सब प्रकार के लालच दिए। सुल्तान के अनुसार, "मैंने अपने काफिर लोगों को पैगम्बर का धर्म स्वीकार करने की प्रेरणा दी और मैंने यह घोषित किया कि प्रत्येक मनुष्य जिसने इस मत को दोहराया और मुसलमान बन गया, उसे जजिया से मुक्ति मिल जानी चाहिए। इस विषय की सूचना बड़ी मात्रा में लोगों के कान तक पहुँची, बहुत बड़ी संख्या में हिन्दुओं ने अपने को पेश किया और उन्हें इस्लाम में दीक्षित कर दिया गया।" वे हिन्दू जो मुसलमान बन गए उन्हें जजिया देना आवश्यक न रहा। जिन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया उन्हें जागीरों, नकद उपहारों, उपाधियों, सम्मानों और नौकरियों से कृतार्थ भी किया गया।

सुल्तान शिया लोगों व उन गैर-सुन्नी मुसलमानों के प्रति भी असहिष्णु था जिन्हें कट्टर सुन्नी काफिर समझते थे। शिया लोगों के विषय में सुल्तान यह कहता है–"मैंने उन सब लोगों को पकड़ लिया और मैंने उन्हें उनकी त्रुटियों से परिचित कराया। उनमें सबसे अधिक उत्साहियों को मैंने मृत्युदण्ड दे दिया और शेष को मैंने निन्दा व लोक दण्ड दिया। मैंने सबके सम्मुख उनकी पुस्तकों को जला दिया, अल्लाह की कृपा से, इस शिया वर्ग का प्रभाव पूर्णतया दब गया।" मूलहिन्द व अबहतियान को बन्दी बना लिया गया और देश से निकाल दिया गया और उनके धार्मिक कृत्यों पर रोक लगा दी गई। मेंहदवी लोगों को सजाएँ दी गईं और उनके नेता रुक्नुद्दीन को काफिर होने के दोष में बन्दी बना लिया गया और कुछ सहायकों तथा शिष्यों के साथ उसका वध कर दिया गया। सुल्तान हमें बताता है कि लोगों ने रुक्नुद्दीन के टुकड़े कर दिए और हड्डियाँ चूर-चूर कर डालीं। सूफी लोगों के साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया गया।

सुल्तान मिस्र के खलीफा के प्रति विशेष सम्मान रखता था। उसने अपने को खलीफा का सहायक प्रदर्शित किया। अपने शासन काल के प्रथम 6 वर्षों में, सुल्तान ने मिस्र के खलीफा से दो बार शासक पद का प्रमाण व सम्मान के वस्त्र प्राप्त किये। सिक्कों पर अपने नाम के साथ उसने खलीफा का नाम भी जुड़वा दिया। खुतबा में सुल्तान के नाम के साथ खलीफा का नाम भी पढ़ा जाने लगा।

नोट

सुल्तान की गृहनीति के विषय में कुछ छोटे पहलुओं पर भी ध्यान देना वांछनीय होगा। सुल्तान मुहम्मद तुगलक के पापों को कम करना चाहता था। उसने आदेश दिया कि उन मनुष्यों के उत्तराधिकारियों को उपहारों से संतुष्ट करके राजा की ओर खींच लिया जाये जिन्हें मुहम्मद तुगलक के शासन काल में अंग, नाक, कान, आँख, हाथ या पैर से हाथ धोना पड़ा था। इस विषय में उन्हें प्रमाण-पत्र की सहायता से उचित प्रकार से लिखी हुई घोषणा देना आवश्यक था। ऐसे लिखे हुए क्षमापत्रों को मुहम्मद तुगलक के मकबरे के निकट एक सन्दूक में बंद कर रखा गया था, जिससे कयामत के दिन उनकी सहायता मिल सके। जिन लोगों को पिछले शासन कालों में अपने ग्रामों, भूमियों तथा प्राचीन पैतृक सम्पत्तियों से वंचित होना पड़ा था, उन्हें फिर से उसके अधिकार दे दिये गये। न्यायालयों में उनके अधिकारों को ध्यान के साथ देखा गया और जब वे सिद्ध हो गये, तो उनकी सम्पत्ति उन्हीं को वापस कर दी गई।

1358 ई. में फिरोज को जान से मारने के लिए एक षड्यंत्र रचा गया। उसकी चचेरी बहन खुदावन्दजादा तथा उसके पति ने मिलकर यह प्रबंध किया कि सुल्तान के उनके घर पर आने के अवसर पर सशस्त्र मनुष्यों द्वारा उसका वध कर दिया जाये। परन्तु उसके पुत्र दावर मलिक ने यह षड्यंत्र फोड़ दिया जो अपने सौतेले पिता से कोई सहानुभूति नहीं रखता था। उसने संकेतों द्वारा सुल्तान को यह जता दिया कि उसका जीवन खतरे में है और इसलिए सुल्तान अपने वध की तैयारी के पहले ही उस मकान से बाहर निकल आया। अपने महल में लौटने पर, सुल्तान ने उस मकान को घेर लेने का आदेश दिया और इस प्रकार वे सब मनुष्य गिरफ्तार कर लिए गये जिनका आशय सुल्तान को मारना था। खुदावन्दजादा को मृत्युदण्ड दिये जाने की जगह उसको बंदी बना लिया गया, परन्तु उसके पति को निर्वासन की सजा मिली।

विदेश नीति (Foreign Policy)

फिरोज तुगलक एक पवित्र व दयालु शासक था। उसके पास वह साहस न था जो चौदहवीं शताब्दी के सुल्तान के लिए आवश्यक था। उसमें उन गुणों का अभाव था जो दिल्ली साम्राज्य के उन सब भागों को उसके अधिकाराधीन करने में सहायक हो सकते थे, जो मुहम्मद तुगलक के शासन काल में स्वतंत्र हो चुके थे। सुल्तान को युद्धों से बहुत भय लगता था और रक्तपात देखकर उसका हृदय डूबने लगता था। **टामस** के अनुसार, "बंगाल के दो अभियानों में उसका सेनापतित्व व परिणामतः थट्टा का पतन सबसे निचले स्तर की वस्तु मालूम होता है, जिस प्रकार वह कच्छ के मरुस्थलों व जाजनगर के दुर्गम स्थानों में भटकता रहा, वह उसकी मूढ़ता का परिचायक है।" दक्षिण को अपने आधीन करने में सुल्तान का कोई प्रयोजन प्रतीत नहीं होता। जब उसके अधिकारियों ने उससे दौलताबाद के लिए एक अभियान भेजने के विषय में कहा, तो "सुल्तान को बड़ी घबड़ाहट हुई,

उसकी आँखें आँसुओं से छलकती हुई पाई गईं और उनके तर्क को स्वीकार करते हुए उसने कहा कि इस्लाम धर्म के मनुष्यों के विरुद्ध संग्राम करने का उसने कभी कोई संकल्प नहीं किया।" उसके शासन काल में कोई भी मंगोल आक्रमण नहीं हुआ। याहिया हमें बताता है कि "राज्य के सीमा प्रांतों की सुरक्षा बड़ी सेनाओं तथा सम्राट के शुभ चिन्तकों को वहाँ रखकर हो जाती थी।"

नोट

1. **बंगाल** (Bengal)**:** हाजी इलियास बंगाल का स्वतंत्र शासक था। वह पूर्वी व पश्चिमी बंगाल का स्वामी बन बैठा था। उसने तिरहुत को अपने प्रदेश में मिलाने के उद्देश्य से उस पर आक्रमण किया। युद्ध के लिए अपनी इच्छा न होते हुए भी, फिरोज तुगलक ने यह अनुभव किया कि शम्सुद्दीन के विरुद्ध कार्य किया जाए। नवम्बर 1353 ई. में, सुल्तान 70,000 घोड़ों वाली सेना के साथ दिल्ली से चला। जब इलियास ने सुल्तान के आने का समाचार सुना, वह इकदला के दुर्ग में चला गया जो पंडुआ से 10 या 12 मील की दूरी पर स्थित था। भगोड़े शत्रु का पीछा करते हुए सुल्तान ने बंगाल के लोगों के लिए एक घोषणा जारी की, जिसका उल्लेख डाक्टर ईश्वरी प्रसाद ने इस प्रकार किया है, "यह दिल्ली सल्तनत के इतिहास में असाधारण लेखपत्रों में से एक था और यह फिरोज की नर्म नीति पर प्रकाश डालता है।" मनुष्यों को सुविधाओं का वचन देकर घोषणा यह की गई, "चूँकि हमारे पवित्र कानों तक यह बात पहुँची है कि इलियास हाजी लखनौती व तिरहुत प्रदेश के लोगों पर अत्याचार एवं दमनकारी व्यवहार कर रहा है; अनाश्यक रूप से रक्त प्रवाहित कर रहा है, स्त्रियों तक का रक्त बह रहा है, यद्यपि प्रत्येक मन और धर्म में यह सुप्रतिष्ठित नियम है कि किसी भी स्त्री का, भले ही वह काफिर हो, वध नहीं किया जाना चाहिए; और जबकि उपरोक्त इलियास हाजी ऐसे अवैध कर लगा रहा है, जो इस्लाम में विधि-विहित नहीं हैं और इस प्रकार जनता को कष्ट दे रहा है; जबकि न तो ऐसे जीवन एवं सम्पत्ति की सुरक्षा है, न सम्मान एवं पवित्रता का बचाव है; और जबकि यह प्रदेश हमारे स्वामियों द्वारा जीता गया था और हमको उत्तराधिकार के तथा इमाम (मिस्र के अब्बासी खलीफा) की भेंट के रूप में प्राप्त हुआ है, हमारे शाही एवं साहसपूर्ण व्यक्तित्व पर इस राज्य के लोगों की रक्षा का भार आ पड़ा है। क्योंकि इलियास हाजी भूतपूर्व सुल्तान के प्रति आज्ञाकारी तथा सिंहासन के प्रति भक्तिपूर्ण था; और हमारे मंगलमय राज्याभिषेक के अवसर पर भी उसने अधीनता एवं राजभक्ति स्वीकार की थी, और हमारी सेवा में न्याय प्रार्थनाएँ एवं उपहार भेजता रहा है, जैसा कि अधीन व्यक्ति के लिए उचित है, इसलिए यदि इससे पूर्व उसके उन अत्याचारों एवं दमन का, जो वह प्रभु के प्राणियों पर कर रहा है, कणमात्र भी हमारे पवित्र ध्यान में लाया गया होता तो हम उसको ऐसी चेतावनी देते जिससे वह इनसे विरत हो जाता; और जबकि वह

नोट

सीमा से आगे बढ़ गया है और उसने हमारे अधिकार के प्रति विद्रोह किया है इसलिए हम जनता की प्रसन्नता के लिए एक अजेय सेना के साथ आ पहुँचे हैं; इसके द्वारा हम सबको उसके अत्याचारों से मुक्त करना, उसके दमन के घावों का न्याय एवं दया की औषधि द्वारा उपचार करवाना चाहते हैं और चाहते हैं कि अत्याचार एवं दमन की उष्ण शोषक वायु द्वारा मुरझाया हुआ उनका (प्रजा जनों का) जीवन वृक्ष हमारी कृपा के स्वच्छ जल से हरा-भरा तथा फलान्वित हो जाये।" हाजी इलियास दिल्ली सेनाओं द्वारा पराजित हुआ, परन्तु सुल्तान ने अपनी इस कठिनाई के साथ प्राप्त विजय का पूरा लाभ लिया और सितम्बर 1364 ई. में बंगाल का राज्य में बिना विलय किए ही दिल्ली वापस आ गया। सुल्तान के इस कार्य के विषय में दो मत हैं। प्रथम यह है कि घिरे हुए दुर्ग में से औरतों के विलाप के शोर को सुनकर सुल्तान ने लौट चलने का निश्चय कर लिया। शम्से-सिराज अफीफ के अनुसार, "दुर्ग में तूफान मचाना, अधिक मुसलमानों को तलवार के घाट उतारना और प्रतिष्ठित महिलाओं को अपमान का पात्र बनाना एक ऐसा अपराध होगा जिसके लिए वह कयामत के दिन कोई उत्तर न दे सकेगा और जिससे उसमें तथा मंगोलों में कोई अन्तर नहीं रह जाएगा।" दूसरा मत यह है कि सुल्तान इसलिए भाग गया क्योंकि वह उन भयानक परिणामों से डरता था जो वर्षा ऋतु के आगमन के कारण घटित हो सकते थे। उसके भागने का चाहे कोई भी कारण क्यों न हो, हमें टामस के इस विचार से सहमत होना पड़ेगा कि इस "आक्रमण का परिणाम केवल दुर्बलता की स्वीकृति निकला।"

कुछ वर्ष बाद फिरोज ने बंगाल को पुनः जीतने का प्रयास किया। पूर्वी बंगाल के फखरुद्दीन मुबारक शाह का जामाता जफर खाँ सुनार गाँव से भागकर दिल्ली आया और उसने बंगाल के शासक के दमनकारी कार्यों की शिकायत फिरोज तुगलक से की। हाजी इलियास की मृत्यु ने भी फिरोज को बंगाल के विरुद्ध अभियान करने की प्रेरणा दी। फिरोज तुगलक ने अपनी पुरानी सभी सन्धियों व मित्रता के वचनों को हटा दिया और 1359 ई. में हाजी इलियास के पुत्र तथा उत्तराधिकारी सिकन्दर शाह के विरुद्ध आगे बढ़ा। सुल्तान की सेना में 70,000 घोड़े, लगभग 500 हाथी और काफी पैदल सेना थी। मार्ग में सुल्तान 6 मास तक गोमती नदी के किनारे जफराबाद में ठहरा और वहाँ मुहम्मद तुगलक की स्मृति और जौनपुर नगर स्थापित किया क्योंकि मुहम्मद तुगलक का नाम राजकुमार जूना खाँ था। जब वर्षा ऋतु निकल गई, सुल्तान ने बंगाल की ओर अपना प्रस्थान शुरू किया। अपने पिता की भाँति सिकन्दर शाह इकदला के दुर्ग में जा छिपा जिसे दिल्ली के सैनिकों ने घेर रखा था। दुर्ग की वीरता के साथ रक्षा की गई परन्तु जब वर्षा ऋतु शुरू हो गई और

उस क्षेत्र में बाढ़ आ गई तो सुल्तान ने सिकन्दर शाह के साथ ऐसी सन्धि कर ली जो बंगाल के शासक को रुचिकर प्रतीत हुई। फल यह हुआ कि बंगाल का दूसरा अभियान अपने उद्देश्य में असफल रहा। इसने सुल्तान की कमजोरी सिद्ध कर दी।

नोट

2. **जाजनगर** (Jajnagar)**:** बंगाल से दिल्ली वापस आते समय, सुल्तान ने जाजनगर (वर्तमान उड़ीसा) को जीतने का निश्चय किया। यह बताना कठिन है कि जाजनगर जीतने के पीछे सुल्तान का सच्चा ध्येय क्या था। सर वुल्जले हेग का मत यह है कि सुल्तान पुरी जीतना चाहता था जो जगन्नाथ के मन्दिरों के लिए प्रसिद्ध थी। सुल्तान के आते ही जाजनगर का शासक भाग निकला और उसने तेलिंगाना में शरण ली। सुल्तान ने हिन्दू मन्दिरों को नष्ट कर दिया। उनकी मूर्तियाँ समुद्र में फेंक दी गईं और उनमें से कुछ को मुसलमानों के पैरों तले कुचलने के लिए दिल्ली ले आया गया। इसके बाद जाजनगर के शासक को वापस बुला लिया गया और उसको इस शर्त पर प्रदेश वापस कर दिया गया कि वह प्रत्येक वर्ष सुल्तान को कुछ हाथी भेंट किया करेगा।

   जाजनगर से सुल्तान छोटा नागपुर गया। नागपुर के रास्ते में सुल्तान रास्ता भूल गया और कुछ महीनों तक सुल्तान के आश्रय स्थान के विषय में कोई भी ज्ञान न हो सका। उन जंगलों में बहुत से सैनिकों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा।

3. **नगरकोट** (Nagarkot)**:** यह सत्य है कि मुहम्मद तुगलक ने 1337 ई. में नगरकोट का दुर्ग जीता था, परन्तु मुहम्मद तुगलक के ही शासन काल के अन्तिम दिनों में यह स्वतंत्र हो चुका था। फिरोज तुगलक ने इसे एक बार फिर जीतने का निश्चय किया। 6 महीनों तक इस दुर्ग पर घेरा पड़ा रहा और अन्ततः इसके शासक ने अधीनता स्वीकार कर ली। सुल्तान ने ज्वालामुखी मन्दिर में प्रवेश किया। उसकी मूर्तियाँ तोड़ डाली गईं और उनके टुकड़ों को गाय के रक्त व माँस में साना गया। कुछ मूर्तियों को विजय की स्मृति में मदीना भेजा गया। यह वर्णनीय है कि ज्वालामुखी मन्दिर से सुल्तान को बहुत-सी संस्कृत पुस्तकें प्राप्त हुईं और उनमें से कुछ का दैलायल-ए-फिरोज शाही के नाम से फारसी में अनुवाद भी किया गया।

4. **सिन्ध** (Sindh)**:** मुहम्मद तुगलक सिन्ध में लड़ते हुए मरा था और सिन्ध में ही एक डेरे में फिरोज तुगलक की ताजपोशी हुई थी। सिन्ध को इसलिए फिर से जीतना आवश्यक समझा गया। 1361-62 ई. में फिरोज तुगलक 90,000 घुड़सवारों, 480 हाथियों, 5,000 नावों तथा असंख्य पैदल सेना को लेकर सिन्ध के जामों की राजधानी थट्टा के विरुद्ध बढ़ा। सिन्ध के शासक जाम बबानिया ने 20,000 घुड़सवार और 4,00,000 पैदल सेना की सहायता से सुल्तान का विरोध करने का निश्चय किया। अकाल व महामारी फूट पड़ने के

नोट

कारण दिल्ली की सेना को बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ा। इस प्रकार दिल्ली सेना का लगभग 1/3 भाग नष्ट हो गया। दुर्भाग्यवश, गुजरात की ओर बढ़ने में फिरोज अपना मार्ग खो बैठा क्योंकि उसके पथ-प्रदर्शकों ने उसके साथ धोखाधड़ी की। वह कच्छ की खाड़ी में पहुँच गया। लगभग 6 महीने तक सुल्तान व उसकी सेनाओं के विषय में कुछ पता न चल सका। फिर भी उसके योग्य मंत्री खाने जहाँ मकबूल ने उनके पास नई सेना भेजी और उसकी सहायता से सुल्तान ने 1363 ई. में सिन्ध पर आक्रमण किया और उन्हें समझौता करने पर विवश कर दिया। सिन्धी लोग सुल्तान का आधिपत्य स्वीकार करने व कर के रूप में कई लाख टंके का वार्षिक कर अदा करने पर सहमत हो गये। जाम बबानिया को दिल्ली लाया गया और उसके स्थान पर उसके भाई की नियुक्ति कर दी गई। पराजित जामों ने सुल्तान के प्रति जीवन भर अपनी निष्ठा का प्रदर्शन दिया। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "सिन्ध का अभियान फिरोज तुगलक के शासन काल की एक अति मनोरंजक घटना है। यह सुल्तान की मूर्खता एवं कूटनीतिक अदूरदर्शिता का अपूर्व उदाहरण है।"

फिरोज की मृत्यु (Death of Firoz)

सुल्तान के अन्तिम दिन शान्तिपूर्ण नहीं थे। जैसे-जैसे वह वृद्ध हुआ, उसका अनुमान असफल होने लगा। सुल्तान को एक तीव्र धक्का लगा जबकि 1374 ई. में उसके ज्येष्ठ पुत्र फतेह खाँ का देहान्त हो गया। अपने पुत्र मुहम्मद को शासन-प्रबंध में भागीदार बनाना सुल्तान के लिए एक गलती सिद्ध हुई। क्योंकि कार्य करने की जगह राजकुमार ने अपना सारा समय विलास में व्यतीत किया। राजकुमार की कार्य में रुचि उत्पन्न कराने के लिए बहुत से प्रयत्न किए गए किन्तु वे निष्फल रहे। निराश होकर कुलीन पुरुषों ने मुहम्मद खाँ की शक्ति के विरुद्ध एक विद्रोह खड़ा कर दिया और मुहम्मद खाँ लड़ने पर बाध्य हो गया। वह विजय के निकट आ चुका था जबकि कुलीन पुरुष सुल्तान को रणक्षेत्र में ले आए। फल यह हुआ कि मुहम्मद खाँ हार गया और अपनी जान बचाने के लिए वह सिरमौर की पहाड़ियों में भाग गया। तब फिरोज ने अपने पौत्र गयासुद्दीन तुगलक शाह (फतेह खाँ के पुत्र) को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और उसको राजसी उपाधि भी प्रदान की। 80 वर्ष की आयु में फिरोज तुगलक की 20 सितम्बर, 1388 ई. को मृत्यु हो गई। मोरलैंड के मतानुसार, "फिरोज की मृत्यु से एक युग समाप्त हो गया। कुछ ही वर्षों में साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में भारत में एक भी प्रभावशाली मुस्लिम शक्ति न रही।"

खाने जहाँ मकबूल (Khan-i-Jahan Maqbul)

खाने जहाँ मकबूल वास्तव में तेलिंगाना का एक हिन्दू था। उसका हिन्दू नाम कुट्टु या कुन्नू था। मुहम्मद तुगलक के समय में वह मुसलमान बन गया। उसे मुल्तान की जागीर मिल गई थी और

नोट

उसने बड़ी कुशलता के साथ उसका प्रबंध भी किया। जब फिरोज गद्दी पर बैठा, उसने मकबूल को अपने दरबार में बुलाया और अहमद बिन अय्याज के पतन के बाद उसे प्रधानमंत्री बना दिया। सुल्तान ने उसे खाने जहाँ अर्थात् 'विश्व का स्वामी' की उपाधि प्रदान की। सुल्तान को उसमें इतना विश्वास था कि जब कभी वह दिल्ली से बाहर जाता था, तो राज्य का कार्य मकबूल को ही सौंप जाता था। उसने भी सहायतार्थ नई सेना भेजकर अपने राजा को सिन्ध में हारने से बचा लिया था। लेनपूल के मतानुसार, "सुल्तान का सहायक होने के नाते उसने उस समय राज्य को सुरक्षित रखा जबकि उसका स्वामी बाहर होता था। उसने अपूर्व योग्यता तथा कुशलता से राज्य का शासन प्रबंध चलाया। यदि पहले की अपेक्षा सीमाएँ अधिक सीमित होतीं, तो छोटे क्षेत्र को अधिक विकसित व अधिक उपजाऊ बना दिया जाता। निस्संदेह यह मकबूल का प्रभाव तथा राजपूत स्त्री बीबी नैला के रक्त का ही प्रभाव था कि नये शासन में अत्यधिक कुलीनता व कृषक वर्ग के लिए विचारशीलता के गुण प्रकट हुए।"

यद्यपि मकबूल एक महान् राजनीतिज्ञ था, तथापि वह भोग-विलास का दास भी था। उसके हरम में श्याम रंग की यूनानी स्त्रियों से लेकर केसरी रंग की चीनी स्त्रियों तक लगभग 2,000 स्त्रियाँ रहती थीं। सुल्तान को मकबूल से इतना प्यार था कि उसने उसके प्रत्येक पुत्र को एक हजार से अधिक की वार्षिक आय और उसकी प्रत्येक पुत्री के विवाह के लिए उससे भी अधिक धन स्वीकार कर रखा था। उसके हरम की स्त्रियों की संख्या देखते हुए यह व्यय बहुत अधिक होगा। मकबूल में अन्य दोष भी था। वह अपने रिश्तेदारों तथा बच्चों के लिए बहुत ऊँचे तथा आय वाले पद प्रदान करता था। मकबूल काफी लम्बी आयु तक जीवित रहा और जब 1370 ई. में उसकी मृत्यु हो गई, तो पिता के स्थान पर उसके पुत्र जूना शाह को नियुक्त कर दिया गया और उसे भी खाने जहाँ की उपाधि दी गई। दुर्भाग्यवश वह अपने पिता की भाँति वफादार न निकला। उसने सुल्तान व उसके पुत्र राजकुमार मुहम्मद खाँ के बीच सम्बन्ध बिगाड़ने का प्रयास किया। जब सुल्तान को इसका ज्ञान हुआ तो उसने उसका निष्कासन कर दिया।

फिरोज का व्यक्तित्व व मूल्यांकन (Character and Estimate)

समकालीन भारतीय लेखक फिरोज की प्रशंसा करने में एकमत हैं। उनका विचार है कि नासिरुद्दीन मुहम्मद के समय से कोई भी राजा "ऐसा न्यायप्रिय, दयालु, ईश्वर से डरने वाला व निर्माणकर्ता" नहीं हुआ जैसा फिरोज था। जनता फिरोज की उपासना करती थी। उसने बुराइयों में सुधार किया। उसने अत्याचार पर प्रतिबंध लगाए। उसने सिंचाई की वृद्धि की। उसने बेकार व जरूरतमंद लोगों की ओर ध्यान दिया। उसने वृद्ध अधिकारियों को निष्कासित करने से इंकार कर दिया और उनके पुत्रों को उनके स्थान पर कार्य करने की आज्ञा दी। उसने निर्धन मुसलमानों की विवाह के विषय

नोट

में सहायता की। उसने सब वर्गों के मनुष्यों के लिए चिकित्सालयों का प्रबंध कराया। वह एक सच्चा मुसलमान था। वह रोजे रखता था और लोकप्रार्थनाएँ भी करता था। अपनी वृद्धावस्था में वह बहरायच में सलर मसूद के तीर्थ स्थान पर आया और वहाँ उसने एक पावन कार्य के रूप में अपना मुंडन कराया। उसने कुरान का बिना परामर्श किए कभी कोई कार्य नहीं किया। उसने राज्यपालों तक का चुनाव करते समय पवित्र पुस्तक के शुभ संकेतों के अनुसार कार्य किया। वह अपनी जनता के कल्याण के प्रति चिंतित रहता था। उसके शासन काल में जनता ने समृद्धि का आनंद लिया।

फिर भी, उसके जीवन के कुछ ऐसे पहलू हैं जो उसकी महत्ता पर आघात करते हैं। वह एक सेनानी नहीं था और इसलिए उसने उन प्रदेशों को फिर से जीतने का प्रयास नहीं किया जो उसके पूर्ववर्तियों के समय में दक्षिण में खोए जा चुके थे। वह शासन-प्रबंध में कठोर नहीं था। उसकी अनुचित उदारता स्पष्ट करने के लिए अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। यह पहले ही बताया जा चुका है कि उसने एक सिपाही को टंका दिया जिससे वह अपने निरीक्षक को रिश्वत दे सके। सुल्तान ने सामंती आधार पर अपनी सेना का संगठन करके एक गलती की। उसे जागीर प्रथा का पुनः संचालन नहीं करना चाहिए था जिसका अलाउद्दीन खिलजी ने उन्मूलन कर दिया था। बड़ी जागीरों का अनुदान परेशानी उत्पन्न करने वाला था और अन्ततः तुगलक राज्य को छिन्न-भिन्न करने में यह तत्व भी आंशिक रूप से उत्तरदायी था। सुल्तान ने बड़ी संख्या में दास बनाने में भी एक त्रुटि की। इन दासों ने देश के शासन प्रबंध में हस्तक्षेप किया और इस प्रकार वे तुगलक साम्राज्य के पतन के लिए आंशिक रूप से उत्तरदायी बने। तुगलक वंश के पतन का आंशिक उत्तरदायित्व सम्राटों की धार्मिक नीति पर भी है। हिन्दू तथा अन्य गैर-सुन्नी मुसलमान तुगलक सम्राटों के शत्रु बन गए। सुल्तान ने उलेमाओं को भी शासन कार्यों का स्वामी बना कर ठीक काम नहीं किया। डॉ. आर.पी. त्रिपाठी के अनुसार, "इतिहास की विडम्बना इस तथ्य में प्रदर्शित होती है कि जिन तत्वों ने फिरोज को लोकप्रियता प्रदान की, वही दिल्ली की सल्तनत को कमजोर बनाने के लिए भी बहुत मात्रा में उत्तरदायी बने हैं।"

एस.आर. शर्मा के विचारानुसार, "फिरोज न अशोक था न अकबर, जो धार्मिक संयम के लिए प्रसिद्ध हैं। फिरोज औरंगजेब की भाँति धर्मोन्मत्त था, वरन् उसके विपरीत वह बहुत मदिरा पीने वाला भी था। परन्तु इस सबके होते हुए भी वह अपने प्रत्येक पूर्ववर्ती से अधिक रचनात्मक बुद्धि रखता था। सैनिक उत्साहाभाव और राज्य में सामंतवाद लाने की मूर्खता ही वे अन्य दोष हैं जो उस पर लगाए गए हैं।"

फिरोज की तुलना जलालुद्दीन खिलजी से करने का प्रयास किया गया है। परन्तु यह कहा जाता है कि फिरोज की अन्य किसी शासक की अपेक्षा नासिरुद्दीन मुहम्मद से तुलना करना अधिक

नोट

अच्छा होगा। नासिरुद्दीन की भाँति वह धर्म के प्रति अधिक अभिरुचि रखता था और उसी की भाँति उसने खाने जहाँ मकबूल को अपना बलबन माना। दोनों शासक कोमल व क्षमाशील स्वभाव के थे, हालांकि फिरोज अधिक कुशल शासक था। सर वुल्जले हेग के अनुसार, "दोनों निर्बल शासक थे, परन्तु मुहम्मद की अपेक्षा फिरोज अधिक कमजोर व डगमगाने वाला था, दोनों दयालु थे परन्तु फिरोज की दयालुता मुहम्मद की अपेक्षा अधिक सचेष्ट थी। फिरोज मुहम्मद की अपेक्षा बहुत अधिक योग्यता रखता था और उसकी कमजोरी का कारण यह था कि वह एक सुस्त मनुष्य की भाँति अपने व्यवसाय के विस्तारों में जाने से घृणा करता था और कष्ट सहन करने से बचना चाहता था। उसकी दयालुता त्रुटिपूर्ण थी क्योंकि वह भ्रष्टाचारी अधिकारियों के प्रति उतनी ही दयालुता बरतता था जितनी अपरिश्रमी कृषकों की ओर, उसका सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं के निर्माण के प्रति चाव कदाचित् उसकी दयालुता व आडम्बर के कारण था।"

हेनरी इलियट ने फिरोज की तुलना अकबर से करने का प्रयत्न किया है। परन्तु डॉ. ईश्वरी प्रसाद का कथन है कि यह तुलना अनावश्यक तथा अन्यायसंगत है। उसके कथनानुसार, "फिरोज में उस बुद्धि का शतांश भी नहीं था जो ऐसे विशाल हृदय वाले व बुद्धिमान शासक के लिए अनिवार्य है जो सार्वजनिक हित के उच्च मंच से समस्त वर्गों तथा पंथों की ओर शान्ति, सद्भावना व सहनशीलता के उपदेश देता था। फिरोज के सुधारों में स्थिरता का अभाव था; वे मुस्लिम शासन व्यवस्था को शक्तिशाली बनाने और उन हिन्दुओं का विश्वास जीतने में असफल रहे जिनकी भावनाएँ उसकी धार्मिक असहिष्णुता द्वारा कटु बन चुकी थीं। उन्होंने पूर्णतया ऐसी प्रतिक्रिया को जन्म दिया, जो उसी वंश के लिए घातक सिद्ध हुई जिसका वह किसी प्रकार से कोई योग्य प्रतिनिधि था।"

सर वुल्जले हेग के मतानुसार, "फिरोज का शासनकाल अकबर के शासन काल से पहले भारत में मुस्लिम शासन के अत्यधिक तेजवान युग का उपसंहार करता है।" अपने चरित्र में कुछ दोषों के होते हुए भी फिरोज "शासन प्रबंध को सुधारने और अपनी प्रजा की दशा संभालने तथा उसका प्रेम जीतने में सफल हुआ। सैनिक सामर्थ्य और विस्तार के विषयों में परिश्रमशीलता ऐसा गुण है जो प्राचीन शासकों के लिए नितांत आवश्यक थे, फिरोज में इन दोनों का अभाव था। बंगाल में दो असफल अभियानों के पश्चात् उसके पास प्रदेश की स्वाधीनता को मान्यता देने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा न रहा, उसके उतावलेपन ने दो बार उसकी सेना के अस्तित्व को खतरे में डाल दिया। उसका बुराइयों को आसानी से सहन कर लेना उसकी सर्वोच्च सत्ता को पूर्णतया नष्ट कर देता, यदि उसके वे अधिकारी, जिनको होशियारी के साथ चुना गया था और जिन पर उसका पूर्ण विश्वास था, पूरी तरह चौकस व सावधान न होते। वह वैयक्तिक लोकप्रियता जो उसने एक वहमी, निरंकुश व अत्याचारी शासक के प्रिय व दयावान उत्तराधिकारी होने पर प्राप्त की, उसने

नोट

उसके विश्वसनीय अधिकारियों की निष्ठा को प्राप्त कर लिया, परन्तु उनके लिए उसके अत्यधिक शक्ति-दान ने उसकी गद्दी की शक्ति को घटा दिया। कोई भी नीति, चाहे कितनी ही सुनिर्मित क्यों न हो, उसके उत्तराधिकारियों के कमजोर शासन में उस शक्ति को बनाए न रख सकती थी, उसकी मृत्यु के दस वर्षों के भीतर ही उसके राज्य पर भयानक चोट पड़ी। उसकी विकेन्द्रीयकरण वाली व्यवस्था उसके योग्यतम उत्तराधिकारी को भी विस्मय में डाल देती और उसके वंश के शीघ्र पतन का कारण बनी।"

1.6 सारांश

गयासुद्दीन तुगलक (Ghiyas-Ud-Din Tughluq) या गाजी मलिक (Ghazi Malik) तुगलक वंश का संस्थापक था। यह वंश करौना तुर्क के वंश के नाम से भी प्रसिद्ध है क्योंकि गयासुद्दीन तुगलक का पिता करौना तुर्क था। गाजी तुगलक एक साधारण परिवार का पुरुष था। उसकी माता पंजाब की एक जाट महिला थी और उसका पिता बलबन का तुर्की दास था। अपने ऐसे जन्म के कारण "गाजी मलिक के चरित्र में इन दो जातियों के मुख्य गुणों–हिन्दुओं की विनम्रता व कोमलता तथा तुर्कों का पुरुषार्थ व उत्साह का मिश्रण हुआ।"

गयासुद्दीन तुगलक का शासन-काल दो भागों में बाँटा जा सकता है–गृह नीति व विदेश नीति। जहाँ तक गृह नीति का सम्बन्ध है, उसका प्रथम कार्य कुलीन जनों व अधिकारियों का विश्वास प्राप्त करना तथा साम्राज्य में व्यवस्था स्थापित करना था। यह सच है कि उसने खुसरो शाह के सहायकों का निर्दयता के साथ निष्कासन करा दिया परन्तु अन्य कुलीन जनों व अधिकारियों के साथ कुछ दयापूर्ण व्यवहार किया। उसने उन सबको उनकी भूमियाँ वापस कर दीं जिन्हें अलाउद्दीन खिलजी ने छीन लिया था। जहाँ तक उसकी आर्थिक नीति का सम्बन्ध है, उसने भूमिकर एकत्र करने के लिए बोली दिलवानी (System of farming of taxes) बन्द कर दी। मालगुजारी की बोली देने वालों को दीवान-ए-विजारत तक सिफारिश पहुँचाने तक की अनुमति नहीं दी गई।

गाजी मलिक ने राज्य के सारे विभागों की ओर ध्यान दिया। "न्यायिक व पुलिस विभाग इतने कुशल थे कि भेड़िया बकरी के बच्चे को पकड़ने का साहस नहीं कर सकता था और शेर व हिरन एक ही घाट पर पानी पीते थे।" अलाउद्दीन द्वारा चलाई गई चेहरा व दाग व्यवस्था जारी रखी गई। एक बहुत कुशल डाक व्यवस्था का प्रतिपादन भी किया गया।

जब गाजी मलिक बंगाल में था, उसे अपने पुत्र जूना खाँ के कृत्यों के विषय में समाचार मिला। अपने लिए एक शक्तिशाली दल बनाने के विचार से जूना खाँ अपने अनुचरों की संख्या बढ़ा रहा था। वह शेख निजामुद्दीन औलिया, जिसके साथ उसके पिता के सम्बन्ध अच्छे न थे, का

नोट

चेला बन गया। कहा जाता है कि शेख ने एक भविष्यवाणी की थी कि राजकुमार जूना खाँ बहुत शीघ्र दिल्ली का सुल्तान होगा। अन्य ज्योतिषियों ने भी बताया था कि गाजी मलिक दिल्ली नहीं पहुँचेगा। गाजी मलिक शीघ्रता के साथ बंगाल से दिल्ली लौटने के लिए चला। राजकुमार जूना खाँ ने अफगानपुर, दिल्ली से लगभग 6 मील की दूरी पर एक गाँव में एक लकड़ी का भवन अपने पिता का स्वागत करने के लिए बनवाया।

राजकुमार जूना खाँ (Prince Juna Khan) जो मुहम्मद तुगलक के नाम से भी जाना जाता है गयासुद्दीन तुगलक का ज्येष्ठ पुत्र था। उसका पालन-पोषण एक सैनिक की भाँति हुआ था और उसने उसी में अपने को प्रसिद्ध कर लिया। वह एक तीक्ष्ण-वृद्धि वाला बालक था। खुसरो शाह द्व ारा उसे 'तुरंगों का स्वामी' नियुक्त किया गया था। परन्तु जूना खाँ ने अपने संरक्षक खुसरो शाह के विरुद्ध एक आंदोलन शुरू कर दिया और उसने खुसरो शाह को उलट फेंकने में अपने पिता की सहायता की।

मुहम्मद तुगलक के उपरांत फिरोज तुगलक गद्दी पर बैठा। उसका जन्म 1309 ई. में हुआ व उसकी मृत्यु 1388 ई. में हुई। वह गयासुद्दीन तुगलक के छोटे भाई रजब का पुत्र था। उसकी माता भट्टी राजपूत कन्या थी जिसने अपने पिता रणमल, अबूहर के सरदार के राज्य को मुसलमानों के हाथों से नष्ट होने से बचाने के लिए रजब से विवाह करने पर सहमति प्रदान कर दी थी।

जब 20 मार्च, 1351 ई. को मुहम्मद तुगलक की मृत्यु हो गई, तो उस डेरे में पूर्ण अव्यवस्था व अशान्ति फैल गई जिसे सिंध के विद्रोहियों व मंगोल वेतनार्थी सैनिकों ने लूटा था व जिन्हें मुहम्मद तुगलक ने तगी के विरुद्ध संग्राम करने हेतु किराये पर रख लिया था। सिंधियों व मंगोलों ने काम तमाम कर दिया होता, परन्तु उसी समय फिरोज से गद्दी पर बैठने को कहा गया।

फिरोज तुगलक के सिंहासनारोहण के विषय में कुछ विवाद हैं। जियाउद्दीन बरनी का मत है कि मुहम्मद तुगलक ने एक आदेशपत्र (testament) छोड़ा जिसमें उसने फिरोज तुगलक को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था परन्तु सर वुल्जले हेग ने इस आदेशपत्र की विश्वसनीयता पर संदेह किया है। उसका विचार है कि वह बालक जिसे ख्वाजा-ए-जहाँ ने गद्दी पर बिठाया वह मुहम्मद तुगलक का कोई "काल्पनिक पुत्र" नहीं था, वरन् उसके रक्त से था। फलस्वरूप, फिरोज का सिंहासनारोहण कोई यथाक्रम वस्तु न थी और इसलिए उसे बलादग्राही (usurper) माना जा सकता है।

1.7 शब्दकोश

- **मूल्यांकन :** आँकना।
- **स्थानांतरण :** तबादला करना।

नोट

1.8 अभ्यास-प्रश्न

1. गयासुद्दीन तुगलक दिल्ली की गद्दी पर कब बैठा? उसकी गृह नीति और विदेश नीति का वर्णन करें।
2. गयासुद्दीन तुगलक के शासन का मूल्यांकन प्रस्तुत करें।
3. मुहम्मद तुगलक को पागल सुल्तान क्यों कहा जाता है?
4. जूना खाँ (मुहम्मद तुगलक) के प्रारंभिक जीवन का संक्षिप्त परिचय दें।
5. मुहम्मद तुगलक का चरित्र-चित्रण करें।
6. फिरोज तुगलक कौन था? उसके सिंहासनारोहण का वर्णन करें।

1.9 संदर्भ पुस्तकें

- पूर्व मध्यकालीन भारत का सामंती समाज और संस्कृति– रामशरण शर्मा, राजकमल प्रकाशन।
- मध्यकालीन भारत का इतिहास– प्रदीप कुमार, आर्य पब्लिकेशन्स।
- पूर्व मध्यकालीन भारत (दिल्ली सल्तनत)– श्रीनेत्र पाण्डेय, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड।
- मध्यकालीन भारत का इतिहास– शैलेन्द्र शैन्गर, अटलांटिक पब्लिशर्स।
- मध्यकालीन भारत में नगरीकरण– नम्रता सिंह, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन।

अध्याय-2

तैमूर का आविष्कार

नोट

संरचना (Structure)

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 उत्तरकालीन तुगलक शासक
2.4 तैमूर का भारत पर आक्रमण (1398)
2.5 सारांश
2.6 अभ्यास-प्रश्न
2.7 संदर्भ पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे–

- उत्तरकालीन तुगलक शासक से संबंधित जानकारी हेतु;
- तैमूर का भारत पर आक्रमण (1398) के बारे में।

2.2 प्रस्तावना

तैमूर के आक्रमण ने तुगलक वंश के पतन में अन्तिम एवं स्पष्ट योगदान दिया। आक्रमण के समय भी महमूद शाह व नुसरत शाह दो शासक थे जो एक ही समय पर दिल्ली का शासक बनने का दावा करते थे। जिस रीति से दिल्ली की प्रजा को लूटा गया व उसका हत्याकांड किया गया, उसने तुगलक वंश की नींव को पूर्णतया हिला दिया होगा। हमें बताया जाता है कि तीन महीनों तक दिल्ली में कोई भी शासक न रहा। देश में बिल्कुल अव्यवस्था व अशान्ति थी। विभिन्न प्रांत बिल्कुल स्वतंत्र बन गए और उनके विरुद्ध कदम उठाने वाला कोई भी न था। अपने पुनः शासक बन जाने के बाद तक महमूद शाह ने अपने आधीन राज्य में शान्ति व व्यवस्था लाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। उसने अपना सारा समय विलासिता में व्यतीत किया।

2.3 उत्तरकालीन तुगलक शासक

नोट

फिरोज तुगलक के बाद उसका पौत्र गद्दी पर बैठा जिसने गयासुद्दीन तुगलक शाह द्वितीय की उपाधि धारण की। उसके चाचा नासिरुद्दीन मुहम्मद ने उसके सिंहासनारोहण का विरोध किया, परन्तु वह हार गया और कांगड़ा भाग गया। यह नया सुल्तान अपना जीवन विलासिता में व्यतीत करने लगा और उसने अपनी शक्ति को अपने समस्त प्रतिद्वन्द्वियों को मार्ग से हटाकर दृढ़ करना चाहा। उसने अपने भ्राता सालार शाह को कैद कर लिया। अपनी रक्षा हेतु अबूबकर, उसका चचेरा भाई, एक षड्यंत्रकारी हो गया। रुक्नुद्दीन ने भी उसकी सहायता की। परिणाम यह हुआ कि गयासुद्दीन तुगलक शाह द्वितीय अपने महल से यमुना की ओर खुलने वाले द्वार से निकल भागा, परन्तु उसे पकड़ लिया गया और रुक्नुद्दीन के सैनिकों के एक समूह ने उसका वध कर दिया।

इन परिस्थितियों में 19 फरवरी, 1389 ई. को अबूबकर शाह राजा बना। उसने रुक्नुद्दीन को अपना मंत्री नियुक्त किया। परन्तु बाद में उसका कत्ल करा दिया जब उसे सिंहासन को हड़पने वाले षड्यंत्र में एक सहयोगी की भाँति पाया गया। अबूबकर शाह व नासिरुद्दीन मुहम्मद के बीच सत्ता के लिए संघर्ष चल रहा था। नासिरुद्दीन मुहम्मद कांगड़ा से चलकर समाना पहुँचा जहाँ 24 अप्रैल, 1389 ई. को उसे शासक घोषित किया गया। उसने दिल्ली की ओर अपनी यात्रा जारी रखी। फलतः अबूबकर नासिरुद्दीन मुहम्मद को पराजित करने में सफल रहा। नासिरुद्दीन यमुना पार करके दोआब पहुँचा और उसने जलेसर में आश्रय लिया जो कि उसका मुख्य केन्द्र था। नासिरुद्दीन मुहम्मद जुलाई, 1389 ई. में एक बार फिर क्षेत्र में आया और दिल्ली की ओर बढ़ा, परन्तु उसे फिर पराजय मिली और उसने जलेसर में शरण ली। दूसरी बार फिर इस पराजय के बाद भी मुल्तान, लाहौर, समाना, हिसार, हांसी व दिल्ली के अन्य उत्तरी जिलों में उसके अधिकार को मान्यता मिलती रही। अप्रैल 1390 ई. में अबूबकर शाह ने दिल्ली छोड़ी परन्तु जब वह नासिरुद्दीन मुहम्मद से मुकाबला करने के लिए जलेसर पहुँचा, तो नासिरुद्दीन ने उसे चक्कर में डाल दिया; 4,000 घोड़ों की सेना के साथ वह दिल्ली पहुँचा और महल पर अधिकार कर लिया। अबूबकर तुरन्त वापस लौटा और ज्योंही उसने दिल्ली में प्रवेश किया, नासिरुद्दीन मुहम्मद भाग निकला और फिर जलेसर पहुँचा। अबूबकर के विरुद्ध एक षड्यंत्र की रचना हुई और जब उसे इसका पता चला तो अपने साथियों के साथ वह मेवात चला गया। इन्हीं परिस्थितियों में नासिरुद्दीन मुहम्मद ने राजधानी में प्रवेश किया और 31 अगस्त, 1390 ई. को फिरोजाबाद के महल में उसका सिंहासनारोहण हुआ।

नोट

नासिरुद्दीन मुहम्मद ने लगभग चार वर्षों (1390-94) तक शासन किया। उसका प्रथम कार्य अबूबकर व उसके साथियों का संहार करना था। अबूबकर ने आत्मसमर्पण कर दिया और उसे बंदी के रूप में मेरठ भेज दिया गया जहाँ शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। 1392 ई. में इटावा के हिन्दुओं ने नरसिंह, सर्वधारन व बीरभान के नेतृत्व में उपद्रव कर दिया। उनके विरुद्ध इस्लाम खाँ को भेजा गया। उसने उन्हें हरा दिया और वह नरसिंह को दिल्ली ले आया। ज्योंही वह लौटा, तुरन्त नया उपद्रव उठ खड़ा हुआ और उसे भी फिर कुचल दिया गया। 1393 ई. में एक अन्य विद्रोह उठ खड़ा हुआ। इस अवसर पर जलेसर के शासक ने धोखे से उनके नेताओं को कन्नौज में बहका दिया। वहाँ उसने

धोखे के साथ सिवाय सर्वधारन के अन्य सब का वध कर दिया, परन्तु सर्वधारन बच निकला और उसने इटावा में आश्रय लिया। उसी वर्ष सुल्तान मेवात के उपद्रवी जिले में होकर निकला और उसको रौंद डाला। 20 जनवरी, 1394 ई. को नासिरुद्दीन मुहम्मद की मृत्यु हो गई। 22 जनवरी, 1394 ई. को उसका पुत्र अलाउद्दीन सिकन्दर शाह की उपाधि ग्रहण करके गद्दी पर बैठा। उसका अल्प शासन काल उपद्रवों से भरा रहा। गद्दी पर बैठने के कुछ समय बाद ही वह बीमार पड़ गया और 8 मार्च, 1394 ई. को उसकी मृत्यु हो गई।

रिक्त गद्दी अब नासिरुद्दीन मुहम्मद के सबसे छोटे पुत्र राजकुमार मुहम्मद को प्राप्त हुई। उसने नासिरुद्दीन महमूद तुगलक की उपाधि ग्रहण की। नए राजा को बहुत-सी कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ा। राजधानी में ऐसे बहुत से शक्तिशाली गुट थे जिन्होंने व्यावहारिक रूप में एक शक्तिशाली सरकार बनाना असंभव कर रखा था। हिन्दू सरदारों व मुस्लिम राज्यपालों ने केन्द्रीय सरकार की सत्ता का खुले रूप से उल्लंघन किया। कन्नौज से लेकर बिहार व बंगाल तक सारा देश अव्यवस्थित हो गया। महान् कुलीनों व सरदारों ने अपने हितों व सुविधाओं के अनुकूल राजसी शक्ति का उपयोग किया। ख्वाजा जहाँ जिसे सुल्तान-उस-शर्क या 'पूर्व का राजा' बना दिया गया था, जौनपुर में स्वाधीन बन बैठा और उसने वहाँ एक नए वंश की स्थापना की।

कुछ कुलीन सरदारों ने फिरोज तुगलक के एक पौत्र नुसरत खाँ को सिंहासन के उत्तराधि कारी के रूप में आगे बढ़ाया। फिरोजाबाद के अमीरों, मलिकों और पुराने शासन के दासों ने भी उसको सहायता प्रदान की। इस प्रकार विरोधी केन्द्रों पर खड़े हुए दो सुल्तान दिखाई दिए जिनके बीच सिंहासन गेंद की भाँति इधर से उधर घूमने लगा। बहुत से सरदार पैदा हुए परन्तु उनमें बहादुर नाहिर, मल्लू इकबाल और मुकर्रब खाँ सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण थे। विभिन्न नगर जो विभिन्न समयों

नोट

पर राज्यों की राजधानी रहे थे, अब उन पर कुछ गुटों का अधिकार हो गया। मुकर्रब खाँ व महमूद शाह दिल्ली में थे। नुसरत शाह व फिरोज के अन्य सरदार फिरोजाबाद में थे। बहादुर नाहिर, जिसके पद पर अस्थायी रूप से मुकर्रब खाँ ने अधिकार कर लिया था, दिल्ली में था। मल्लू जो अपने जीवन के लिए मुकर्रब खाँ के प्रति ऋणी था और जिसने उससे इकबाल खाँ की उपाधि ग्रहण की थी, सीरी में था। तीन वर्षों तक नासिरुद्दीन महमूद व नुसरत शाह के बीच एक अनिश्चयात्मक किन्तु विनाशकारी संग्राम चलता रहा। नासिरुद्दीन महमूद का राज्य दिल्ली की दीवारों से घिरा हुआ था और नाम मात्र में नुसरत शाह दोआब का दावा करता था। इन गृह युद्धों में प्रांतीय राज्यपालों ने कोई भाग न लिया। वे विरोधी वर्गों के भाग्य में होने वाले परिवर्तनों को देखते रहे। 1397 ई. के अन्त की ओर यह समाचार मिला कि तैमूर की सेना ने सिन्ध पार कर लिया है और उच्छ में घेरा डाल दिया है। विदेशी सेना के आगमन का राजधानी के गुटों पर अपना प्रभाव पड़ा। मल्लू इकबाल नुसरत खाँ की ओर चला गया और नए मित्रों ने एक-दूसरे की ओर वफादार रहने का वचन दिया। परन्तु मल्लू इकबाल ने धोखा देकर नुसरत खाँ पर आक्रमण किया जिससे नुसरत खाँ बचकर पानीपत आ गया। तब मल्लू इकबाल ने मुकर्रब खाँ को राजधानी से बाहर निकालने का निश्चय किया और दो महीनों तक दोनों के बीच भयानक संग्राम चलता रहा। यद्यपि कुछ कुलीन पुरुषों के मध्यस्थ बन जाने के कारण उनके बीच सन्धि हो गई, तथापि मल्लू इकबाल ने मुकर्रब खाँ के घर पर आक्रमण किया और वहाँ उसका कत्ल कर दिया। दिल्ली में यह व्यवस्था चल रही थी जिस समय अक्टूबर 1398 ई. में तैमूर ने सिंध को पार किया तथा चनाब व रावी को पार करके मुल्तान पर पहुँच गया, जिस पर उसका पौत्र पहले ही से अपना अधिकार जमाए हुए था।

2.4 तैमूर का भारत पर आक्रमण (1398)

अमीर तैमूर या तैमूर लंग (लंगड़ा) "भाग्यशाली भविष्य का स्वामी" 1336 ई. में कैश में पैदा हुआ था, जो स्थान समरकन्द के दक्षिण में 50 मील दूर था। वह अमीर तुर्गे का पुत्र था, जो तुर्कों की एक उच्च जाति बरलास की गुरकन शाखा का सरदार था। 33 वर्ष की आयु में वह चुगताई तुर्कों का प्रधान बन गया। उसने फारस व उसके अन्य पड़ोसी देशों के विरुद्ध युद्ध किए। वह फारस तथा उसके अधीन प्रदेशों पर अपना नियंत्रण रखने में सफल रहा। भारत पर आक्रमण करने से पहले उसने मेसोपोटामिया व अफगानिस्तान को जीत रखा था।

नोट

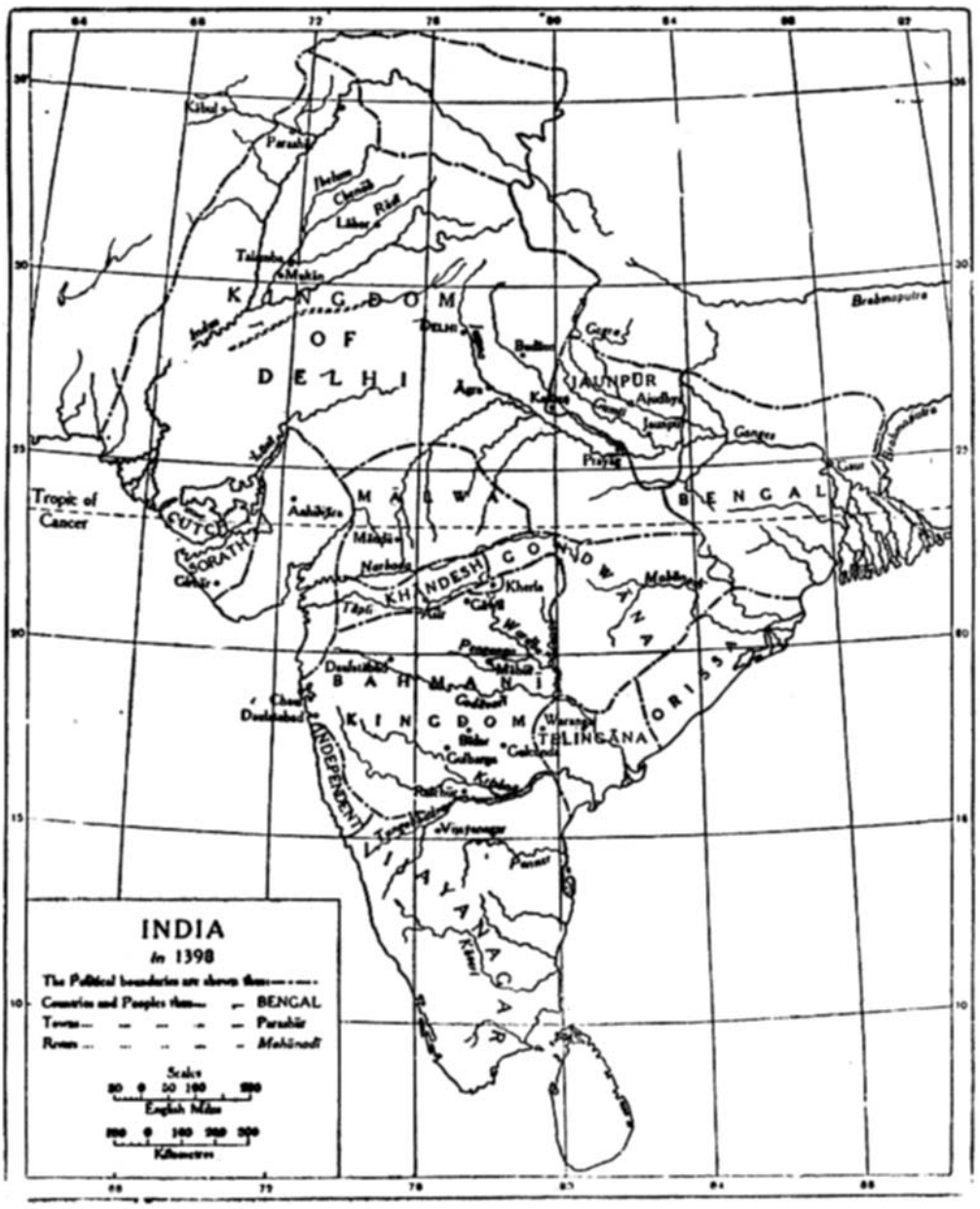

तैमूर

तैमूर के भारत आक्रमण के पीछे क्या उद्देश्य थे, इस विषय में ज्ञान प्राप्त करने के काफी प्रयत्न किये गए हैं, किन्तु ऐसा पता चलता है कि भारत पर आक्रमण करने में तैमूर के कोई स्पष्ट उद्देश्य नहीं थे। वह एक महान सैनिक, आक्रांता व जोखिम उठाने वाला पुरुष था और उसकी राज्यों की जीतने की महत्त्वाकांक्षा थी। हो सकता है कि उसने अधिक प्रदेश जीतने के विचार से भारत पर आक्रमण किया हो। इसके अतिरिक्त भारत में सोने, चांदी, मोती व जवाहरात आदि ने उसे आकर्षित किया परन्तु जफरनामा व मलफूजात-ए-तैमूरी में यह कहा गया है कि उसके अभियान का मुख्य

नोट

ध्येय विजय या लूट नहीं वरन् काफिरों का संहार था। यह बताया जाता है कि तैमूर ने योद्धाओं और उलेमाओं के परामर्श के वास्ते एक परिषद् बुलाई। शाहरुख ने उसे भारत के विशाल क्षेत्र व उन लाभों से परिचित कराया जो विजय के कारण प्राप्त हो सकते थे। राजकुमार मुहम्मद ने भारत के स्रोतों और उसकी कीमती धातुओं, मोतियों व हीरों की ओर संकेत किया। उसने इस विषय के धार्मिक पहलू पर भी संकेत किया। कुछ कुलीन सरदारों ने भारत में बस जाने के बुरे परिणामों से सचेत किया। यह सब सुनकर तैमूर ने (यह कहा जाता है) यह कहा, "हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने में मेरा उद्देश्य विधर्मियों के विरुद्ध अभियान करना है, जिससे मुहम्मद के आदेश के अनुसार हम इस देश के निवासियों को सच्चे दीन का अनुयायी बना सकें और जिससे हम उनके मन्दिरों एवं मूर्तियों को नष्ट कर दें तथा खुदा की नजरों में 'गाजी' एवं 'मुजाहिद' बन जायें।" उलेमाओं ने उसके विचारों का समर्थन किया।

भारत की ओर चलने से पहले तैमूर ने अपने पौत्र (जहाँगीर के पुत्र) पीर मुहम्मद को प्राथमिक कार्य के लिए भेजा। पीर मुहम्मद ने सिंध पार किया और उच्छ पर कब्जा कर लिया। तत्पश्चात् वह सुल्तान की ओर बढ़ा जिसे छः महीने के लम्बे घेरे के बाद जीत लिया गया। पीर मुहम्मद ने दीपालपुर व पाकपटन के सारे क्षेत्र पर अधिकार करके सतलुज पार किया और अपने दादा तैमूर की प्रतीक्षा करने लगा।

अप्रैल 1398 ई. में तैमूर ने समरकन्द छोड़ दिया। भारत की ओर आते समय उसे उसके काफिरस्तान के अभियान, सड़क पर दुर्गों के निर्माण तथा विशाल साम्राज्य के कार्य के कारण कुछ देर हो गई। 15 अगस्त, 1398 ई. को उसने काबुल छोड़ा और 24 सितम्बर, 1398 ई. को सिन्ध पार किया। दो दिनों में वह झेलम पहुँच गया। स्थानीय शासक, शहाबुद्दीन मुबारक ने तैमूर का विरोध किया, परन्तु वह हार गया। मुबारक शाह व उसकी सारी सेना झेलम नदी में मारी गई। तैमूर ने झेलम व रावी को पार किया और 13 अक्टूबर, 1398 ई. को तुलम्बा के सामने घेरा डाल दिया। उसने नगर को नष्ट न करने की सहमति दी यदि उसे निश्चित धन दे दिया जाये किन्तु उसके होते हुए भी उसने हत्याकाण्ड का आदेश दे दिया। तैमूर को जसरथ से निपटना पड़ा जो लाहौर का शासक बन बैठा था। सतलुज नदी के किनारे जसरथ का दुर्ग छीन लिया गया और वह भाग निकला। 25 अक्टूबर, 1398 ई. को तैमूर सतलुज के उत्तरी किनारे पर पहुँचा। 26 अक्तूबर को पीर मुहम्मद उससे आ मिला। भारत पर अन्य अभियानों में तैमूर की सेना के दक्षिण पक्ष का नेतृत्व पीर मुहम्मद के पास रहा।

नोट

पाकपट्टन तथा दीपालपुर के नगरों ने पीर मुहम्मद का विरोध करके तैमूर के क्रोध को प्रज्वलित कर दिया। पाकपट्टन नगर के निवासियों को लूट लिया गया, दास बना लिया गया व उनका संहार कर दिया गया। उस नगर में पीर मुहम्मद की सेना की टुकड़ी की हत्या का प्रतिकार लेने के लिए दीपालपुर के 500 निवासियों की हत्या कर दी गई। एक भट्टी राजपूत राय दूल चन्द भटनेर का राजा था। उसने कठोर विरोध किया परन्तु अन्त में 9 नवम्बर 1398 ई. को उसने आत्मसमर्पण कर दिया।

भटनेर पर पड़ने वाली क्षतिपूर्ति व उसके उगाहे जाने ने जनता के विरोध को उत्पन्न किया। एक हत्याकांड के बाद नगर में आग लगा दी गई और उसे नष्ट कर दिया गया "जिससे कोई यह न कह सके कि उसके आस-पास तक कोई जीवित मनुष्य साँस ले रहा था।" 13 नवम्बर, 1398 ई. को तैमूर ने भटनेर छोड़ दिया और भाग निकलने वाले लोगों का पीछा करते हुए और उनकी हत्या करते हुए सिरसा व फतेहाबाद से निकला। अहरवान को लूट लिया गया और उसमें आग लगा दी गई। तोहना में लगभग 2000 जाटों का वध कर दिया गया। 29 नवम्बर को सारी सेना कैथल में इकट्ठी हुई और पानीपत की ओर चली। 7 दिसम्बर, 1398 ई. को सेना का दायाँ पक्ष यमुना को छोड़ता हुआ दिल्ली पहुँचा। 9 दिसम्बर को सेना ने नदी पार की। 10 दिसम्बर को तैमूर ने लोनी पर अधिकार कर लिया और उसकी हिन्दू प्रजा का संहार किया गया।

नासिरुद्दीन महमूद शाह और मल्लू इकबाल ने नगर की दीवारों के भीतर सेनाएँ एकत्रित कीं। 12 दिसम्बर को मल्लू इकबाल ने तैमूर की सेना के पृष्ठ भाग पर आक्रमण किया। पृष्ठ भाग की रक्षा के लिए दो टुकड़ियाँ भेजी गईं, मल्लू हार गया और उसे दिल्ली की ओर पीछे खदेड़ दिया गया। उसके आक्रमण का एकमात्र फल भयानक हत्याकांड था। पृष्ठ भाग पर मल्लू द्वारा आक्रमण के समय लगभग एक लाख हिन्दू कैदी थे जिन्हें तैमूर ने पकड़ रखा था और उन्होंने आक्रमण के समय प्रसन्नता प्रदर्शित की थी। तैमूर ने यह भाव देख लिया था और उसने सबकी हत्या का आदेश दे दिया। तैमूर को इस बात का डर था कि कहीं युद्ध के दिन ये लोग "अपना घेरा तोड़कर डेरे को न लूट लें और शत्रु से जा मिलें।"

ज्योतिषियों की चेतावनियों के होते हुए भी और सेना के संदेहों पर ध्यान न देते हुए तैमूर ने 15 दिसम्बर, 1398 ई. को यमुना पार की और 17 दिसम्बर को प्रातःकाल आक्रमण के लिए अपनी सेना तैयार कर ली। मल्लू इकबाल व महमूद शाह ने भी अपनी सेनाओं को दिल्ली के बाहर निकाल लिया। भारतीय सेना में 10,000 घुड़सवार, 40,000 प्यादे और 120 हाथी थे जिन पर दाँतों

नोट

का कवच चढ़ा हुआ था, विषैली करौलियाँ थीं और जिनकी पीठ पर मजबूत लकड़ी के ढाँचे चढ़े हुए थे, जिन पर से भाले तथा चकती फेंकने का कलादार धनुष व आग पकड़ने वाली वस्तुओं के फेंकने का प्रबंध था। आक्रमणकारी सेना ने अपनी आक्रमण करने वाली रेखा के पास एक खाई खुदवाई और छप्पर की टट्टियाँ लगवा दीं जिनके पीछे भैंसे बाँध दिए गए जिससे हाथियों का आक्रमण रोका जा सके। तैमूर ने अपनी सेना का दायाँ पक्ष पीर मुहम्मद व अमीर यादगार बरलास के नेतृत्व में रखा, वाम पक्ष को सुल्तान हुसेन, शहजादा खालिद और अमीर जहाँ के आदेशाधीन रखा तथा स्वयं केन्द्रीय पक्ष का निदेशन किया। दोनों सेनाओं का दिल्ली के बाहर मुकाबला हुआ और घमासान युद्ध छिड़ गया। तैमूर के सेनापतियों ने हमला शुरू किया जिन्होंने अपने को अग्र पंक्ति से अलग कर दिया और दायें पक्ष की ओर आगे जाने से रुक कर शत्रु की अग्र पंक्ति के पीछे आ गए, उन पर टूट पड़े और "उनको ऐसे तितर-बितर कर दिया जैसे भूखे शेर भेड़ों के झुंड को तितर-बितर कर देते हैं और एक ही हमले में 600 सिपाहियों को मार दिया। पीर मुहम्मद ने शत्रु के वाप पक्ष को तोड़ दिया और उसे युद्धक्षेत्र से भागने पर विवश कर दिया।" सुल्तान महमूद शाह तथा मल्लू इकबाल ने केन्द्रीय पक्ष पर आक्रमण किया। उन्होंने बड़े साहस के साथ संग्राम किया। "कमजोर कीड़े भयानक वायु से नहीं लड़ सकते और न कमजोर मृग भयानक बाघ से, अत: वे भागने पर विवश हो गए।" महमूदशाह व मल्लू इकबाल रणक्षेत्र से भाग गए और दिल्ली की चहारदीवारी पर तैमूर ने अपनी ध्वजा फहराई। सैय्यदों, काजियों, शेखों व नगर के उलेमाओं ने तैमूर का स्वागत किया और उनकी सेवाओं व प्रार्थनाओं का उत्तर देते हुए उसने दिल्ली की प्रजा को क्षमा कर दिया परन्तु सैनिकों की उच्छृंखलता, क्षमा न किए जाने वाले अन्य नगरों के निवासियों के निर्दयतापूर्वक पकड़े जाने और जुर्माने के लगाए जाने ने गड़बड़ पैदा कर दी। फल यह हुआ कि सेनाएँ निर्वासित कर दी गईं और कई दिनों तक रक्तपात चलता रहा। बहुत संख्या में लोग पकड़ लिये गए और उन्हें दास बना लिया गया। तैमूर द्वारा साम्राज्य के विभिन्न भागों में कारीगरों को भेजा गया। सारी दिल्ली और जहाँपनाह के तीनों नगरों का तैमूर ने संहार कर दिया जो उन पर 15 दिनों तक अधिकार जमाए रहा।

जफरनामा का लेखक दिल्ली की लूट का इस प्रकार वर्णन करता है–"लेकिन उस शुक्रवार की रात को नगर में लगभग 15,000 आदमी थे जो शाम से लेकर सवेरे तक लूटपाट तथा मकान जलाने में लगे रहे। अनेक स्थानों पर विधर्मी 'गहरों' ने मुकाबला किया। प्रात:काल जो सैनिक बाहर थे, वे स्वयं को न रोक सके और नगर में घुस गए तथा उत्पात मचाने लगे। उस रविवार के दिन,

नोट

महीने की 17 तारीख को, इस सारे नगर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया और जहाँपनाह तथा सीरी में अनेक प्रासाद नष्ट किए गए। 18 तारीख को भी इसी प्रकार लूट जारी रही। प्रत्येक सैनिक को 20 से अधिक आदमी दास के रूप में प्राप्त हुए और बहुत से तो नगर से 50 या 100 तक पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों को दास बनाकर लाए। लूट की दूसरी वस्तुएँ अपार थीं। सब प्रकार के रत्नाभरण, लाल हीरे, विभिन्न प्रकार के पदार्थ एवं वस्त्र, सोने चाँदी के पात्र, अलाई टंकों के रूप में धन-राशियाँ तथा अन्य मुद्राएँ अगणित संख्या में प्राप्त हुई। बन्दी बनाई गई स्त्रियों में अधिकांश कमर में सोने या चाँदी की पेटियाँ तथा पैरों में बहुमूल्य छल्ले पहने हुए थीं। औषधियों, सुगन्धित पदार्थों तथा ऐसी ही वस्तुओं पर तो किसी ने ध्यान भी नहीं दिया। महीने की 19 तारीख को पुरानी दिल्ली की ओर ध्यान दिया गया क्योंकि अनेक विधर्मी हिन्दू वहाँ भाग गए थे और वहाँ उन्होंने बड़ी मस्जिद में शरण ले ली थी, जहाँ उन्होंने आत्मरक्षा की तैयारी की थी। अमीर शाह मलिक तथा अली सुल्तान तबाची 500 विश्वसनीय आदमियों को लेकर उनके विरुद्ध चल पड़े और अपनी तलवारें खींचकर उन पर टूट पड़े तथा उनको नरक में भेज दिया। हिन्दुओं के मुण्डों से ऊँचे-ऊँचे टीले बना दिए गए और उनके रुंड मांसाहारी पशु-पक्षियों का आहार बन गए। इसी दिन पुरानी दिल्ली लूटी गई। जो नगर निवासी जीवित बच रहे उनको बंदी बनाया गया। अनेक दिनों तक लगातार ये बन्दी नगर से बाहर लाए जाते रहे और प्रत्येक 'तुमान' अथवा 'कुशन' के अमीर ने इनके एक-एक दल को अपने अधिकार में लिया। नगर के कई हजार कारीगर एवं शिल्पी लाए गए और तैमूर की आज्ञा से कुछ को उन राजकुमारों, अमीरों तथा आगाओं में बांटा गया, जिन्होंने विजय में योगदान दिया था और कुछ को उनके लिए अलग रखा गया जो अन्य भागों में शाही अधिकार बनाए हुए थे। तैमूर ने अपनी राजधानी समरकन्द में एक मस्जिदे-जामी बनाने की योजना बनाई थी और अब उसने आज्ञा दी कि सब संगतराश उस पवित्र कार्य के लिए रखे जायें।"

दिल्ली से तैमूर मेरठ की ओर बढ़ा जिसकी रक्षा इलियास अफगान, उसका पुत्र, मौलाना अहमद थानेसरी और सफी वीरता से कर रहे थे। तैमूर ने दुर्ग को भूमि पर गिरवा दिया; लोगों की हत्या करा दी और उनकी सारी सम्पत्ति लूट ली। यह आदेश दिया गया कि समस्त मीनारें व दीवारें जमीन पर गिरा दी जायें और हिन्दुओं के मकानों में आग लगवा दी जाये। तैमूर गंगा की ओर चला व वहाँ एक संग्राम के बाद, जहाँ उसने हिन्दुओं से भरी 48 नावों को लूट लिया व उनको नष्ट कर दिया, उसने नदी पार की और मुबारक खाँ के अधीन 10,000 अश्वारोहियों और पदैल सेना को परास्त किया। उसने हरिद्वार के आस-पास दो हिन्दू सेनाओं को पकड़ लिया व उन्हें लूट लिया।

नोट

वहाँ से वह कांगड़ा की ओर चला और भेड़ों की भाँति हिन्दुओं को मौत के घाट उतारता गया। 16 जनवरी, 1399 ई. को उसने कांगड़ा पर अपना कब्जा कर लिया। तत्पश्चात् वह जम्मू की ओर गया जहाँ का शासक परास्त होने के बाद बन्दी बना लिया गया। "आशाओं, भयों व धमकियों के साथ उसे इस्लाम के ग्रहण करने के प्रलोभन दिखाए। उसने मत स्वीकार कर लिया और गाय का माँस खा लिया जो उसके सहधर्मियों में एक निन्दकार्य है। इससे उसको बहुत सम्मान प्राप्त हुआ और उसे सम्राट के संरक्षण में ले लिया गया।" ठीक जम्मू के राजा की पराजय के बाद कश्मीर के सिकन्दर शाह ने उसकी अधीनता स्वीकार करते हुए अपना संदेश भेजा। एक अभियान लाहौर भेजा गया। नगर पर कब्जा कर लिया गया। शेखा खोखर को तैमूर के सामने लाया गया जिसने उसे मृत्युदण्ड दिया। 6 मार्च, 1399 ई. में तैमूर ने सेना के अधिकारियों व राजकुमारों को उनके प्रांतों में भेजने से पहले विदाई देने के विचार से एक दरबार किया। उस अवसर पर उसने खिज्र खाँ को मुल्तान, लाहौर और दीपालपुर की सरकार का शासक नियुक्त कर दिया। कुछ इतिहासकारों का मत है कि तैमूर ने उसको दिल्ली का वायसराय नियुक्त किया। 19 मार्च, 1399 ई. को तैमूर ने सिन्ध पार किया, दो दिनों के बाद उसने बन्नू छोड़ दिया और कुछ समय के बाद समरकन्द पहुँच गया। उसने अपने एक आक्रमण में भारत पर इतनी मुसीबत ढाई, जितनी कोई भी अन्य पूर्ववर्ती अपने आक्रमण में न ढा सका।

आक्रमण के प्रभाव

1. तैमूर की वापसी के बाद सारा भारत अवर्णनीय अशान्ति व अव्यवस्था में फँस गया। दिल्ली लगभग निर्जन व नष्ट-भ्रष्ट हो गई। वह अनाथ हो गई। जो कुछ भी निवासी बचे, उन्हें अकाल व महामारी का सामना करना पड़ा। चूँकि आक्रमणकारी सेना ने फसलों तथा अनाज के ढेरों को अपार क्षति पहुँचाई थी इसलिए स्वाभाविक रूप से दुर्भिक्ष आ गया। हजारों मनुष्यों के हत्याकांड के कारण वायु तथा जल दूषित हो जाने से कारण महामारी फैल गई। संहार इतना भारी हो गया कि "नगर बुरी तरह से निर्जन हो गए और जो बच गए वे काल का ग्रास बन गए। पूरे दो महीनों तक एक चिड़िया तक ने दिल्ली में अपना पर नहीं हिलाया।"
2. तुगलक साम्राज्य पूर्णतया अस्तव्यस्त हो गया। ख्वाजा जहाँ जौनपुर का एक स्वतंत्र शासक था। बंगाल बहुत पहले ही स्वतंत्र हो चुका था। गुजरात में मुजफ्फर शाह किसी को स्वामी नहीं मानता था। मालवा में दिलावर खाँ ने राजसी शक्ति धारण कर रखी थी। पंजाब व

नोट

अपर सिन्ध का शासन खिज्र खाँ तैमूर के वायसराय की भाँति कर रहा था। समाना गालिब खाँ के पास था। कालपी और महोबा मुहम्मद खाँ के अधीन स्वतंत्र रियासतें बन चुकी थीं। इस समय मल्लू इकबाल बरन में था। कुछ समय के लिए नुसरतशाह दिल्ली का स्वामी बन बैठा, परन्तु मल्लू ने उसे उस स्थान से निकाल दिया और उसे मेवात में शरण लेने पर विवश कर दिया। जहाँ कुछ ही समय बाद उसकी मृत्यु हो गई। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि तैमूर के आक्रमण ने उस डगमगाते हुए तुगलक वंश का अन्त कर दिया, जिसके बाद 1414 ई. में सैय्यद वंश को स्थान प्राप्त हुआ।

3. तैमूर ने भारत की समृद्धि को नष्ट कर दिया। दिल्ली, भटनेर, दीपालपुर, मेरठ व हरिद्वार में कला के बड़े प्रासादों को नष्ट कर दिया गया। लूटमार, आगजनी आदि ने भारत को उसकी महान सम्पत्ति से वंचित कर दिया।
4. तैमूर के आक्रमण ने हिन्दुओं व मुसलमानों के बीच खाई को अधिक चौड़ा कर दिया। हिन्दुओं पर उनके अत्याचारों के कारण मुसलमान लोग हिन्दुओं को अपनी ओर न कर सके क्योंकि हिन्दू लोग उन्हें म्लेच्छ समझने लगे। तैमूर द्वारा हिन्दुओं के हत्याकाण्ड तथा उनके सिरों से मीनारों के बनाए जाने ने कटुता को और भी बढ़ा दिया। तैमूर के आक्रमण ने हिन्दुओं और मुसलमानों को एक-दूसरे के निकट लाने वाली बात को और भी अधिक असम्भव बना दिया।
5. तैमूर के आक्रमण का यह प्रभाव भी पड़ा कि भारतीय कला को केन्द्रीय एशिया तक पहुँचने का अवसर मिला। तैमूर अपने साथ बहुत से शिल्पकार व कारीगर समरकन्द ले गया, जहाँ उन्हें मस्जिदें व अन्य प्रासाद बनाने के लिए रखा गया।
6. तैमूर के आक्रमण का एक अन्य प्रभाव यह हुआ कि उसने मुगल विजय का मार्ग खोल दिया। बाबर तैमूर की नस्ल का था और उसने अपनी इसी नस्ल के कारण दिल्ली के सिंहासन पर दावा दिखाया। तैमूर की पंजाब व दिल्ली की विजयों में बाबर ने अपनी भारतीय विजय की नैतिक व कानूनी तर्क सिद्धि पाई।

तैमूर के आक्रमण के बाद तुगलक वंश (Tughluq Dynasty after Tamur's Invasion)

यह पहले ही कहा जा चुका है कि तैमूर के जाने के बाद नुसरत शाह ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया था परन्तु मल्लू इकबाल ने उसे भगा दिया। 1401 ई. में मल्लू इकबाल ने यह अनुभव किया कि उसके लिए महमूद शाह का सम्मान लाभदायक होगा और इसलिए उसने उसे दिल्ली वापस

नोट

बुलाने के लिए फुसलाया। तैमूर के हाथों हार जाने के बाद महमूद शाह का अनुभव कटु हो चुका था। गुजरात के मुजफ्फर शाह ने उसका स्वागत नहीं किया। मालवा के दिलावर खाँ ने उसका अच्छा स्वागत किया और उसे धार में एक निवासगृह प्रदान किया परन्तु वह दिल्ली वापस आने के चाव को न रोक सका। मल्लू इकबाल ने पूर्ण सम्मान के साथ महमूद शाह का स्वागत किया परन्तु बाद में उसे एक शाही प्रासाद में नजरबंद करा दिया। राज्य पर वह ऐसे शासन करता रहा जैसे कि महमूद शाह मालवा से वापस ही न आया हो।

1402 ई. में मल्लू इकबाल कन्नौज की ओर चला। वह अपने साथ महमूद शाह को भी ले गया। महमूद शाह ने मल्लू के अधीन रहना अत्यन्त अपमानजनक समझा, इसलिए रात में वह शिविर में से निकलकर कन्नौज से भाग आया और जौनपुर के शासक इब्राहीम शाह के यहाँ शरण ली। परन्तु इब्राहीम शाह ने उसका स्वागत नहीं किया और वह कुछ साथियों के साथ वहाँ से चला गया। महमूद शाह कन्नौज के शासक इब्राहीम शाह को वहाँ से निकालने में सफल हो गया और उसने उस नगर को अपना निवास स्थान बना लिया। मल्लू इकबाल दिल्ली वापस चला आया। महमूद शाह के हाथों कन्नौज पर कब्जे को देखकर इब्राहीम शाह ने आधीनता मान ली और स्वयं जौनपुर वापस चला गया।

उसी वर्ष मल्लू ने ग्वालियर पर अधिकार करना चाहा, परन्तु वह असफल रहा और वह वापस लौटने पर विवश हो गया। 1404 ई. में मल्लू चार महीनों तक इटावा घेरे रहा परन्तु उस पर अधिकार जमाने में असफल रहा। उसने कन्नौज पर कब्जा करने का निश्चय किया, किन्तु वहाँ भी असफल रहा। 1405 ई. में मल्लू बहराम खाँ के विरुद्ध बढ़ा जो सबाज में बस गया था। बहराम खाँ भाग गया परन्तु रोपड़ तक उसका पीछे किया गया। एक सन्त शेख बहराम खाँ तथा मल्लू के बीच विरोध दूर करने में सफल रहा और दोनों ने मिलकर खिज्र खाँ के विरुद्ध लड़ने का निश्चय किया। मल्लू ने धूर्तता के साथ बहराम खाँ को मौत के घाट उतरवा दिया। 12 नवम्बर, 1405 ई. को खिज्र खाँ दीपालपुर से चला, उसने पाकपट्टन के पास मल्लू को परास्त किया व उसका अन्त कर दिया।

1405 ई. में मल्लू इकबाल की मृत्यु के बाद दिल्ली का शासन प्रबंध कुछ कुलीन सरदारों के हाथ में आ गया जिनके प्रधान दौलत खाँ लोदी व इख्तियार खाँ थे। उन्होंने महमूद शाह को आमंत्रित किया और वह दिसम्बर 1405 ई. में दिल्ली वापस आया। दौलत खाँ लोदी को दोआब का शासक व इख्तियार खाँ को फिरोजाबाद का शासक नियुक्त कर दिया गया।

1406 ई. में महमूद खाँ ने दौलत खाँ लोदी को समाना की विजय करने के लिए भेजा। जौनपुर के इब्राहीम शाह को उनके दुर्व्यवहार के कारण (जो उसने 1402 ई. में अपने शिविर में

नोट

प्रदर्शित किया था) उसे दण्ड देने के लिए वह स्वयं कन्नौज की ओर बढ़ा। कुछ समय तक महमूद शाह व इब्राहीम शाह की सेनाओं में संघर्ष चलते रहने के बाद एक समझौता हुआ, परन्तु उसके होते हुए भी इब्राहीम शाह कन्नौज पर घेरा डाले रहा तथा उसने उस पर अधिकार कर लिया। वह दिल्ली की ओर बढ़ा और वह यमुना पार करने वाला ही था कि उसे पता चला कि गुजरात का शासक उसके जौनपुर को जीतने का इरादा बना रहा है। इन परिस्थितियों के कारण इब्राहीम शाम जौनपुर वापस पहुँचा। दौलत खाँ लोदी, जो समाना की विजय करने के लिए भेजा गया था, ने बहराम खाँ को समाना से सरहिन्द तक खदेड़ा और उसे आत्मसमर्पण करने पर विवश कर दिया। उसने अपने पराजित शत्रु को अपना मित्र बना लिया और उसे अपने संरक्षण में लेकर समाना में रहने लगा। खिज्र खाँ के आने पर दौलत खाँ लोदी दोआब भाग गया और उसके साथी खिज्र खाँ से मिल गए। समाना के अतिरिक्त, खिज्र खाँ ने सिंधु, सुनाम व हिसार पर अधिकार करके उन्हें अपने राज्य में मिला लिया। इससे दिल्ली की दीवारों के आगे केवल दोआब, रोहतक और संभल महमूद शाह के आधीन रहे।

यह सच है कि महमूद शाह ने 1408 ई. में हिसार वापस ले लिया, जनवरी 1409 ई. मे खिज्र खाँ फिरोजाबाद की दीवारों के बाहर दिखाई दिया और उसने उसका घेरा डाल लिया। परन्तु खिज्र खाँ वापस लौटने पर बाध्य हो गया क्योंकि अकाल व संहार के कारण लोग सेना की सहायता करने में अशक्त थे। 1410 ई. में खिज्र खाँ ने रोहतक जीत लिया परन्तु 6 महीने तक घेरा डाले रहने के परिश्रम द्वारा प्राप्त फल को बनाए रखने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया गया। 1411 ई. में खिज्र खाँ नारनौल पहुँचा और उसे तथा दिल्ली के दक्षिण में तीन अन्य नगरों को उसने लूट लिया। उसने सीरी में महमूद शाह को घेर लिया परन्तु एक बार फिर अकाल ने उसकी रक्षा की और खिज्र खाँ घेरा हटाने व वापस लौट जाने पर विवश हो गया। फरवरी 1413 ई. में महमूद शाह की मृत्यु हो गई और कैथल में 20 वर्ष तक चलने वाले उसके उस नाममात्र शासन काल का अन्त हुआ जिसमें उसे कभी शक्ति धारण करने को न मिली और जिसमें उसे कई बार राजधानी से भागना भी पड़ा। उसके साथ गयासुद्दीन तुगलक का वंश ही खत्म हो गया। महमूद शाह के विषय में तारीखे मुबारक शाही का रचयिता कहता है–"समस्त राजकाज अत्यधिक अव्यवस्था में पड़ गया था। सुल्तान स्वपदोचित कर्तव्यों की ओर कुछ भी ध्यान न देता था और उसको सिंहासन के स्थायित्व की कुछ भी चिन्ता न थी; उसका सारा समय भोग-विलास में ही बीतता था।"

दौलत खाँ लोदी (Daulat Khan Lodi)

नोट

महमूद शाह की मृत्यु की बाद कुलीन सरदारों ने अपनी निष्ठा का प्रदर्शन दौलत खाँ लोदी के पक्ष में किया। दौलत खाँ ने दोआब में प्रवेश किया और उसने इटावा के राजपूतों तथा बदायूँ के महाबत खाँ को उनका सार्वभौम शासक मानने पर विवश किया। परन्तु दौलत खाँ दिल्ली वापस चला आया क्योंकि वह जौनपुर के इब्राहीम शाह से संघर्ष करना नहीं चाहता था। दिसम्बर 1413 ई. में खिज्र खाँ ने दौलत खाँ के प्रदेश पर आक्रमण किया और उसने मेवात में प्रवेश किया। उसने संभल में लूट मचा दी। मार्च 1414 ई. में उसने 60,000 अश्वारोहियों के साथ सीरी में दौलत खाँ को घेर लिया। दौलत खाँ चार महीनों तक डटा रहा परन्तु बाद में उसने आत्मसमर्पण कर दिया। 28 मई 1414 ई. को खिज्र खाँ ने दिल्ली में प्रवेश किया और सार्वभौम शासक के रूप में लोदी वंश की नींव डाली। हिसार में दौलत खाँ को बन्दी बना लिया गया।

तुगलक वंश के पतन के कारण (Causes of Downfall of Tughlud Dynasty)

जब मुहम्मद तुगलक शासक था, उसके साम्राज्य में सारा भारतवर्ष सिवाय कश्मीर, कच्छ और उड़ीसा व काठियावाड़ के कुछ भाग के, आ गया था। परन्तु उसके पौत्र महमूद शाह की मृत्यु पर उसके राज्य की सीमा एक समकालीन कहावत द्वारा इस प्रकार बताई गई है–"शाह आलम दिल्ली ता पालम।" (इस समय पालम दिल्ली से कुछ मीलों की दूरी पर एक हवाई अड्डा है)। यह छोटा सा राज्य भी लुप्त हो गया और दिल्ली पर सैय्यदों ने अपना राज्य स्थापित कर लिया।

तुगलक वंश के पतन के कई कारण हैं–

1. मुहम्मद तुगलक स्वयं तुगलक साम्राज्य के पतन के लिए आंशिक रूप से उत्तरादायी था। राजधानी दिल्ली से दौलताबाद ले जाने के कारण जनता को बहुत कष्ट उठाने पड़े। उसके सांकेतिक सिक्के वाली योजना ने कोष को रिक्त कर दिया। उसकी खुरासान जीतने की आकांक्षा बहुत महंगी सिद्ध हुई। दोआब में कर ने प्रजा को शत्रुओं में बदल दिया। साम्राज्य में शत्रुओं की ऐसी विशाल संख्या उत्पन्न करने में बहुत काफी उत्तरदायित्व उसके वैयक्तिक चरित्र पर भी निर्भर है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उसके साम्राज्य के विभिन्न भागों में बहुत से उपद्रव हुए। उसी के समय में दक्षिण में बहमनी राज्य की स्थापना हुई। उसी के शासन काल में दक्षिण भारत में विजय नगर राज्य स्थापित हुआ। इसी प्रकार, उसके शासन काल में सारा समय एक के बाद दूसरे विद्रोह को कुचलने में व्यय हुआ और जब 1351 ई. में उसका देहान्त हो गया, उस समय भी वह विद्रोहियों के विरुद्ध संग्राम कर

रहा था। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि मुहम्मद तुगलक की मृत्यु से पहले भी राज्य छिन्न-भिन्न होने की प्रक्रिया चल रही थी।

नोट

2. यह छिन्न-भिन्न होने की प्रक्रिया रुक जाती, यदि मुहम्मद तुगलक के बाद कोई शक्तिशाली शासक आता परन्तु वह हो न सका। उसके बाद फिरोज तुगलक आया जो एक वीर सेनानी नहीं था। यह ठीक है कि उसने बहुत से सुधार किए जिनसे उसने अपने को लोकप्रिय बना लिया किन्तु वह अपनी शक्ति से उन भागों को पुनः विजित न कर सका जो किसी समय दिल्ली सल्तनत के भाग थे। उसने विजय नगर के हिन्दू राजाओं व बहमनी राज्य के मुस्लिम शासकों के विरुद्ध कोई कदम नहीं उठाया।
3. फिरोज तुगलक के उत्तराधिकारियों के अधीन स्थिति और भी बिगड़ गई। गयासुद्दीन तुगलक शाह द्वितीय, अबूबकर शाह, नासिरुद्दीन मुहम्मद, अलाउद्दीन व सिकन्दर शाह जिन्होंने 1388 से 1413 ई. तक शासन किया, सभी बहुत कमजोर थे और इसलिए वे उन भागों को न जीत सके जो स्वतंत्र हो चुके थे। फल यह हुआ कि विघटन की प्रक्रिया रूकने की अपेक्षा फिरोज के उत्तराधिकारियों के शासन काल में और तेज हो गई। वे शासक भोग-विलास में डूबे रहे। उन्होंने अपना सारा समय पारस्परिक झगड़ों में व्यतीत किया। उन्होंने प्रजा को लूटने व उसे मौत के घाट उतारने के लिए सेनाएँ भेजीं, परन्तु उन्होंने लोगों को कोई अच्छा शासन प्रबंध देने की चेष्टा न की जो उनके विश्वास व कर्तव्यपरायणता को जीत लेता।
4. फिरोज तुगलक ने बहुत-सी गलतियाँ कीं जिन्होंने तुगलक वंश के पतन में अपना योगदान किया। उसने जागीर प्रथा फिर से शुरू कर दी। उसने अपने बड़े सरदारों को वेतन की अपेक्षा जागीरें दीं। जागीरों का आशय प्रायः शक्तिशाली रियासतों का बनना हुआ। बड़े-बड़े जिले तथा प्रांत तक बड़े सरदारों व कुलीन लोगों को दे दिए गए। करा व डालामऊ मरदान दौलत को 'पूर्व का राणा' की उपाधि के साथ प्रदान किए गए। जौनपुर तथा जफराबाद दूसरे अमीर को दे दिए। गुजरात सिकन्दर खाँ व बिहार वीर अफगन को दे दिया गया। इन सब कुलीन पुरुषों से सीमाओं की रक्षा करने तथा आंतरिक विषयों का प्रबंध करने की आशा की जाती थी। समय के साथ इन जागीरदारों ने दिल्ली सुल्तान की शक्ति की अवहेलना की और तुगलक साम्राज्य के विरोध में स्वतंत्र रियासतें व राज्य स्थापित कर लिया। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि फिरोज तुगलक ने ऐसी विनाशकारी शक्तियों को छोड़ दिया जिन्होंने अन्त में साम्राज्य के टुकड़े कर दिए। फिरोज के उत्तराधि

नोट

कारियों के शासनकाल ही में अवध का प्रांत तथा गंगा के पार के प्रदेश में बंगाल की सीमाओं तक स्वतंत्र जौनपुर राज्य का संगठन हो गया। गुजरात, मालवा और खानदेश के प्रांतों ने दिल्ली से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और स्वतंत्र राज्य बन गए। ग्वालियर में एक हिन्दू रियासत का उदय हुआ। बयाना व काल्पी में मुस्लिम रियासतें बन गईं। मेवात के सरदार व्यावहारिक रूप से स्वतंत्र हो गए और उन्होंने परिस्थितियों के अनुसार अपनी शक्ति को एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदला। दोआब के हिन्दू समय-समय पर विद्रोह करते रहे और दिल्ली के शासकों को सदा उसी पर भरोसा करना पड़ा जो कुछ वे अपनी सशस्त्र सेनाओं के बल पर प्राप्त कर सके।

5. फिरोज तुगलक द्वारा की गई एक गलती यह थी कि उसने दासों की एक बहुत लम्बी सेना बना ली जो उसके उत्तराधिकारियों के समय में एक खतरा बन गए। फिरोज तुगलक के शासन काल में दासों की संख्या लगभग 1,80,000 थी जिनमें से 40,000 सुल्तान के महल में सेवाओं के लिए नियुक्त थे। यह ठीक है कि दासों की संख्या बढ़ाकर फिरोज तुगलक उन्हें मुसलमान बनाने व इस्लाम धर्म की संख्या बढ़ाने में सफल हुआ, परन्तु इन दासों ने देश के शासन प्रबंध में हस्तक्षेप किया और फलत: शासन का विघटन करने में एक महत्त्वपूर्ण तत्व बन बैठे। हम इनमें ऐसे योग्य दास नहीं पाते जैसे कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश व बलबन जो दास वंश की महत्ता के लिए उत्तरदायी रहे। फिरोज तुगलक के दास केवल विघटनकारी बने रहे जिन्होंने राज्य के हित को छोड़ते हुए अपने स्वार्थ को सामने रखा। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि फिरोज के लिए उसकी दासों की सेना एक भार मात्र सिद्ध हुई।

6. फिरोज तुगलक ने एक अन्य त्रुटि की जिसने तुगलक वंश के पतन को लाने में और योगदान किया। उसके शासन-काल में सेना के बहुत से कर्मचारियों को राजकीय राजस्व से हस्तांतरणीय कार्य दिए जाते थे। उन कार्यों को उनके मूल्य के लगभग 1/3 पर दिल्ली का एक व्यवसायी वर्ग खरीद लेता था। उन्हें जिलों में सिपाहियों के हाथों 1/2 पर बेच दिया जाता था। इस व्यवस्था से बहुत दोष पैदा हो गए और सेना के अनुशासन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। फिरोज तुगलक ने यह भी आदेश दिया कि जब कोई सैनिक वृद्ध हो जाए तो उसका पुत्र, जमाता या दास तक उसके स्थान पर काम में ले लिया जाए। सेना में सेवा को पैतृक कर दिया गया और योग्यता व सामर्थ्य सम्बन्धी तत्वों के प्रति उदासीनता बरती गई। इसका सेना की कुशलता पर घातक प्रभाव पड़ा। ऐसी सेना से विदेशियों के

नोट

आक्रमणों का मुकाबला करने की आशा नहीं की जा सकती थी। फिरोज तुगलक की सेना का अधिकांश भाग उन सैनिकों से निर्मित था जो उसे उसके कुलीन सरदार दिया करते थे। यह सेना केन्द्रीय सरकार अपने नियंत्रण में नहीं रख सकती थी क्योंकि उनकी भर्ती, पदोन्नति व अनुशासन सुल्तान के बजाय उसके कुलीन सरदारों के पास था। सैनिक यंत्र जिस पर साम्राज्य की दृढ़ता निर्भर थी, का शिथिल बनाया जाना, अत्यन्त विनाशकारी था और इसका उत्तरादायित्व फिरोज तुगलक पर ही है।

7. उसकी धार्मिक नीति भी आंशिक रूप में तुगलक वंश के पतन के लिए उत्तरदायी रही है। फिरोज तुगलक एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसे हिन्दुओं व गैर-सुन्नी मुसलमानों को सताने में आनंद आता था। हिन्दुओं के मन्दिरों को नष्ट किया गया और उनकी मूर्तियों को तोड़ा गया व उनका अपमान किया गया। उनकी पुस्तकों को जला दिया गया। धमकियों व प्रलोभनों के आधार पर हिन्दुओं को इस्लाम स्वीकार करने की प्रेरणा दी गई। हिन्दुओं से बड़ी कठोरता के साथ जजिया कर उगाहा गया। ब्राह्मणों तक को मुक्ति न मिल सकी। एक ब्राह्मण को इस दोष के आधार पर मृत्युदण्ड दिया गया कि वह मुसलमानों को अपना धर्म छोड़ने पर उकसा रहा था। कटिहार में दो सैय्यदों को मार दिया गया। फिरोज तुगलक ने कटिहार पर आक्रमण किया और उसकी आज्ञा से हजारों हिन्दुओं को मार दिया गया। उनमें से 23,000 को कैदी बना लिया गया और बाद में उन्हें दास के रूप में परिणत कर दिया गया। यह प्रक्रिया पाँच वर्षों तक चलती रही। यह बात फिरोज की हिन्दुओं के प्रति दुर्भावना की द्योतक है। ऐसा ही व्यवहार फिरोज तुगलक ने गैर-सुन्नी मुसलमानों के साथ भी किया, 'मूलहिद' व 'अबहितयान' पकड़ कर निर्वासित कर दिए गए, 'मेहदवी' लोगों को सजाएँ दी गईं। उनके नेता रुक्नुद्दीन के टुकड़े कर दिए गए और फिरोज तुगलक ने इस बात में गर्व अनुभव किया कि ईश्वर ने उसे इस दृष्टता के दमन के लिए बनाया है। वह शिया लोगों के प्रति भी अत्याचारी था। उनकी पुस्तकें सार्वजनिक रूप से जलाई गईं और उन्हें मृत्युदण्ड भी दिया गया। ऐसी धार्मिक नीति का अनुसरण करके फिरोज तुगलक ने उलेमाओं, शेखों और सैय्यदों व अन्य इस्लामी धार्मिक नेताओं की सद्भावना प्राप्त कर ली होगी, परन्तु ऐसा करके उसने अपनी प्रजा की बहुत विशाल संख्या को काफी सीमा तक अपने से दूर कर दिया और इस प्रकार ऐसे कार्य से उसने अपने साम्राज्य की नींवों को स्वयं हिला दिया। फिरोज तुगलक यह भूल गया कि राज्य का आधार शक्ति नहीं वरन् इच्छा है। अपने कार्य से वह अपनी प्रजा का प्रेम पाने में असफल रहा।

नोट

8. चौदहवीं शताब्दी में इस्लामी राज्य का आधारभूत सिद्धांत शक्ति थी। वह भय व आतंक जिस पर शासक वर्ग टिका हुआ था, लुप्त हो गया। फिरोज तुगलक से प्रजा ने प्रेम तो किया परन्तु वह उससे डरी नहीं। फल यह हुआ कि प्रजा ने उसके शासन की सत्ता की अवहेलना की। कई स्वतंत्र रियासतें बन गईं और साम्राज्य टूटने-फूटने लगा।
9. राज्य के अलौकिक स्वरूप ने राज्य की कुशलता पर और भी बुरा प्रभाव डाला। लम्बे शासन काल में मुल्लाओं व मुफ्तियों का प्रभाव हानिकारक सिद्ध हुआ। ऐसा राज्य जिसमें प्रजा का बहुत बड़ा भाग गैर-मुस्लिम था, वह बहुत समय तक ऐसे कानून के आधार पर नहीं चल सकता था, जिसका स्रोत कुरान था।
10. भारत जीतने के बाद मुसलमानों को प्रत्येक वस्तु मिल गई। उन्हें स्त्रियाँ, मदिरा व धन बहुत मात्रा में मिल गया। उन्होंने ऐय्याशी का जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया। अभियान के बीच में भी उन्होंने एक अव्यवस्थित भीड़ की भाँति व्यवहार प्रदर्शित किया। सैनिक गुण अदृश्य हो गए। ऐसे नमूने की सेना हिन्दुओं, अन्य उपद्रवियों तथा विदेशी आक्रमण ाकारियों के सामने न ठहर सकी।
11. यद्यपि काफी लम्बे समय से हिन्दू एक विदेशी शासन के आधीन रहते चले आ रहे थे, तथापि उन्होंने अपने को स्वतंत्र करने की चेष्टाओं का त्याग नहीं किया। रणथम्भोर को जीतने व उसे अपने राज्य में मिलाने में 150 से अधिक वर्ष लगे। यद्यपि दोआब दिल्ली के बहुत निकट स्थित है, तथापि वह शान्त कभी न रहा। हिन्दू लोग हमेशा उपद्रव करते रहे और उन पर दिल्ली सल्तनत का नियंत्रण केवल नाममात्र रहा। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि ज्योंही दिल्ली सल्तनत की शक्ति कमजोर पड़ी, तो उन्होंने विद्रोह कर दिए और भारत के विभिन्न भागों में स्वतंत्र हो गए।
12. दिल्ली सल्तनत एक 'पुलिस राज्य' था। इसका एकमात्र कार्य शान्ति व व्यवस्था बनाए रखना तथा मालगुजारी उगाहना था। जब वह उन कर्तव्यों को उचित रूप से सम्पादित करने में असमर्थ रही, तो उसने अपने अस्तित्व के आदि कारण को ही खो दिया।
13. **डॉ. लेनपूल** के अनुसार, "हिन्दुओं के साथ पारस्परिक विवाह संबंध भी तुगलक वंश के पतन का एक कारण था।" परन्तु इस विचार को स्वीकार नहीं किया जाता है। यह कहा जाता है कि यद्यपि फिरोज तुगलक की माता हिन्दू थी, फिर भी उसने हिन्दुओं के प्रति कोई नम्रता नहीं बरती। बाद की घटनाएँ भी लेनपूल के विचार की पुष्टि नहीं करतीं। अपने साम्राज्य को दृढ़ बनाने के लिए अकबर ने वैवाहिक संधियों की नीति अपनाई और यह

माना जा सकता है कि ऐसा करने में वह सफल भी हुआ। केवल तभी मुगल साम्राज्य का पतन शुरू हुआ जबकि औरंगजेब ने उस नीति को छोड़ दिया।

14. परन्तु यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भारत पर तैमूर के आक्रमण ने तुगलक वंश के पतन में अन्तिम एवं स्पष्ट योगदान दिया। आक्रमण के समय भी महमूद शाह व नुसरत शाह दो शासक थे जो एक ही समय पर दिल्ली का शासक बनने का दावा करते थे। जिस रीति से दिल्ली की प्रजा को लूटा गया व उसका हत्याकांड किया गया, उसने तुगलक वंश की नींव को पूर्णतया हिला दिया होगा। हमें बताया जाता है कि तीन महीनों तक दिल्ली में कोई भी शासक न रहा। देश में बिल्कुल अव्यवस्था व अशान्ति थी। विभिन्न प्रांत बिल्कुल स्वतंत्र बन गए और उनके विरुद्ध कदम उठाने वाला कोई भी न था। अपने पुनः शासक बन जाने के बाद तक महमूद शाह ने अपने आधीन राज्य में शान्ति व व्यवस्था लाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। उसने अपना सारा समय विलासिता में व्यतीत किया। कोई आश्चर्य नहीं कि उसका साम्राज्य ही लुप्त हो गया। उसकी सत्ता सिद्ध करने के लिए कुछ भी अवशेष न रहा।

नोट

2.5 सारांश

फिरोज तुगलक के सिंहासनारोहण के विषय में कुछ विवाद हैं। जियाउद्दीन बरनी का मत है कि मुहम्मद तुगलक ने एक आदेशपत्र (testament) छोड़ा जिसमें उसने फिरोज तुगलक को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था परन्तु सर वुल्जले हेग ने इस आदेशपत्र की विश्वसनीयता पर संदेह किया है। उसका विचार है कि वह बालक जिसे ख्वाजा-ए-जहाँ ने गद्दी पर बिठाया वह मुहम्मद तुगलक का कोई "काल्पनिक पुत्र" नहीं था, वरन् उसके रक्त से था। फलस्वरूप, फिरोज का सिंहासनारोहण कोई यथाक्रम वस्तु न थी और इसलिए उसे बलादग्राही (usurper) माना जा सकता है।

सुल्तान के अन्तिम दिन शान्तिपूर्ण नहीं थे। जैसे-जैसे वह वृद्ध हुआ, उसका अनुमान असफल होने लगा। सुल्तान को एक तीव्र धक्का लगा जबकि 1374 ई. में उसके ज्येष्ठ पुत्र फतेह खाँ का देहान्त हो गया। अपने पुत्र मुहम्मद को शासन-प्रबंध में भागीदार बनाना सुल्तान के लिए एक गलती सिद्ध हुई। क्योंकि कार्य करने की जगह राजकुमार ने अपना सारा समय विलास में व्यतीत किया। राजकुमार की कार्य में रुचि उत्पन्न कराने के लिए बहुत से प्रयत्न किए गए किन्तु वे निष्फल रहे।

80 वर्ष की आयु में फीरोज तुगलक की 20 सितम्बर, 1388 ई. को मृत्यु हो गई। फिरोज तुगलक के बाद उसका पौत्र गद्दी पर बैठा जिसने गयासुद्दीन तुगलक शाह द्वितीय की उपाधि धारण

नोट

की। उसके चाचा नासिरुद्दीन मुहम्मद ने उसके सिंहासनारोहण का विरोध किया, परन्तु वह हार गया और कांगड़ा भाग गया। यह नया सुल्तान अपना जीवन विलासिता में व्यतीत करने लगा और उसने अपनी शक्ति को अपने समस्त प्रतिद्वन्द्वियों को मार्ग से हटाकर दृढ़ करना चाहा।

अमीर तैमूर या तैमूर लंग (लंबड़ा) ''भाग्य शाली भविष्य का स्वामी'' 1386 ई० में कैश में पैदा हुआ था, जो स्थान समरकन्द के दक्षिण में 50 मील दूर था। वह अमीर तुर्गे का पुत्र था जो तुर्कों की एक उच्च जाति बरलास की गुरकन शाखा का सरदार था।

तैमूर की वापसी के बाद सारा भारत अवर्णनीय अशान्ति व अव्यवस्था में फँस गया। दिल्ली लगभग निर्जन व नष्ट-भ्रष्ट हो गई। वह अनाथ हो गई। जो कुछ भी निवासी बचे, उन्हें अकाल व महामारी का सामना करना पड़ा। चूँकि आक्रमणकारी सेना ने फसलों तथा अनाज के ढेरों को अपार क्षति पहुँचाई थी इसलिए स्वाभाविक रूप से दुर्भिक्ष आ गया। हजारों मनुष्यों के हत्याकांड के कारण वायु तथा जल दूषित हो जाने से कारण महामारी फैल गई। संहार इतना भारी हो गया कि "नगर बुरी तरह से निर्जन हो गए और जो बच गए वे काल का ग्रास बन गए। पूरे दो महीनों तक एक चिड़िया तक ने दिल्ली में अपना पर नहीं हिलाया।"

2.6 अभ्यास-प्रश्न

1. उत्तरकालीन तुगलक शासन का वर्णन करें।
2. तैमूर के भारत पर आक्रमण का वर्णन करें।
3. तैमूर के भारत पर आक्रमण का क्या प्रभाव पड़ा?
4. तुगलक वंश के पतन के क्या कारण थे?

2.7 संदर्भ पुस्तकें

- पूर्व मध्यकालीन भारत का सामंती समाज और संस्कृति– रामशरण शर्मा, राजकमल प्रकाशन।
- मध्यकालीन भारत का इतिहास– प्रदीप कुमार, आर्य पब्लिकेशन्स।
- पूर्व मध्यकालीन भारत (दिल्ली सल्तनत)– श्रीनेत्र पाण्डेय, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड।
- मध्यकालीन भारत का इतिहास– शैलेन्द्र शैन्गर, अटलांटिक पब्लिशर्स।
- मध्यकालीन भारत में नगरीकरण– नम्रता सिंह, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन।

अध्याय-3

सैय्यद वंश

नोट

संरचना (Structure)

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 सैय्यद वंश का इतिहास

3.4 खिज्र खान

3.5 मुबारक शाह

3.6 मुहम्मद शाह

3.7 अला-उद-दीन आलम शाह

3.8 मुबारक शाह (सैय्यद वंश)

3.9 मुहम्मद शाह (1434-43 ई.)

3.10 आलम शाह (1445-51 ई.)

3.11 सारांश

3.12 अभ्यास प्रश्न

3.13 संदर्भ पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे—

- सैय्यद वंश का इतिहास तथा खिज्र खान के बारे में:
- मुहम्मद शाह (1434-43 ई.), आलम शाह (1445-51 ई.) को जानने हेतु:
- अला-उद-दीन आलम शाह एवं मुबारक शाह (सैय्यद वंश) के बारे में।

3.2 प्रस्तावना

सय्यद अर्थात सैय्यद वंश दिल्ली सल्तनत का चौथा वंश था १४१४ से १४५१ तक इन्होने दिल्ली पर शासन किया। तुगलक वंश के बाद इन्होंने अपने वंश की नीव रखी, तैमूर के भारत पर आक्रमण का न्यौता खिज्र खां ने ही दिया था। तैमूर के भारत छोड़ने के समय उसने दिल्ली की सत्ता खिज्र खां को सौप दी, जिन्होंने आगे जाकर सैय्यद वंश की स्थापना की। इसके बाद के शासकों में खिज्र खाँ, मुबारक़ शाह, मुहम्मद शाह, आलमशाह

शाह का नाम आता हैं। तारिख-ए-मुबारक शाही में मुबारक शाह के इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी मिलती हैं। सैय्यद वंश के इन शासकों ने 37 वर्षों तक दिल्ली सल्तनत पर शासन किया था।

नोट

3.3 सैय्यद वंश का इतिहास

सैय्यद वंश की स्थापना खिज्र खां (१४१४ ई १४२१ ई) ने की थी। खिज्र खां ने सुल्तान की उपाधि धारण नही की, उसने रैयत ए आला की उपाधि ली। उसने अपने सिक्कों पर तुगलक सुल्तानों का नाम उत्कीर्ण करवाया था। वह अपने शासनकाल में तैमूर के पुत्र व उत्तराधिकारी शाहरुख के प्रतिनिधि के रूप में शासन का दिखावा करता रहा। सैय्यद शासकों ने इस आधार पर पवित्रता का दावा किया कि मोहम्मद साहब के वंशज भी सैय्यद कहलाते हैं

सल्तनत काल में शासन करने वाला यह एकमात्र शिया वंश था। खिज्र खां के उत्तराधिकारी मुबारक शाह, अलाउद्दीन आलम शाह अयोग्य थे जिससे बहलोल लोदी को मौका मिला जिसने लोदी वंश की स्थापना की। मुबारक शाह, सैय्यद वंश के शासकों में सबसे योग्यतम शासक था। उसके शासनकाल की विस्तृत जानकारी याहिया बिन अहमद सरहिन्दी की पुस्तक तारीख ए मुबारकशाही में मिलती हैं। उसने शाह की उपाधि धारण की थी, अपने नाम का खुतबा पढाया था और अपने नाम के सिक्के चलवाये थे।

सैय्यद वंश का अंतिम शासक अलाउद्दीन आलम शाह के समय तक दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों का राज्य इतना सिमट गया था कि यह कहावत लोकप्रिय हो गई. देखों शाह आलम का राज्य, दिल्ली से पालम तक।

3.4 खिज्र खान

खिज्र खान सैय्यद वंश का संस्थापक शासक था। उन्होंने पैगंबर मुहम्मद के वंशज होने का दावा किया। लेकिन उसका कोई प्रमाण नहीं है। संभवतः उनके पूर्वज मूल रूप से अरब से थे और उन्होंने सिंहासन पर अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए इस तथ्य का उपयोग किया था। फ़िरोज़ तुग़लक़ द्वारा खिज्र खान को मुल्तान का गवर्नर नियुक्त किया गया था। उन्होंने उत्तराधिकार के युद्ध में भाग लिया जो फिरोज की मृत्यु के बाद प्रतिद्वंद्वी राजकुमारों के बीच हुआ।

एक बार उन्हें बयाना में शरण लेनी पड़ी लेकिन जब तैमूर ने भारत पर हमला किया तो उसे एक अच्छा अवसर मिला और उसने उसके साथ बहुत कुछ फेंका। तैमूर उसकी सेवाओं से प्रसन्न था और भारत छोड़ने से पहले उसने उसे मुल्तान, लाहौर और दीपालपुर का गवर्नर नियुक्त किया।

फिर उन्होंने दिल्ली पर कब्जा करने की कोशिश की और आखिरकार, 1414 ई. में दौलत खान लोदी के हाथों से इसे छीनने में सफल रहे। खिज्र खान ने कभी सुल्तान की उपाधि ग्रहण नहीं की और बंदगी-ए-रियात-ए-आला और मसनद से संतुष्ट रहे।

नोट

वह तैमूर के बेटे शाहरुख को सालाना श्रद्धांजलि भेजते रहे और इस तरह, उन्होंने अपनी आत्महत्या को चुनौती नहीं दी, हालांकि सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए उन्होंने एक स्वतंत्र शासक के रूप में व्यवहार किया। तुगलक शासकों के नाम पर भी उनके सिक्के चलते रहे। सोने और चाँदी की कमी के कारण शायद यह आवश्यक था। इसके अलावा, उन्होंने अपने विषयों को अच्छे हास्य के साथ-साथ अपने तुर्क और अफ़गानों के रईसों में रखने की कोशिश की।

सिंहासन पर उनके प्रवेश से पहले, दिल्ली सल्तनत का साम्राज्य दोआब और मेवात के कुछ हिस्सों तक सीमित था। अब उसके परिग्रहण के साथ, यह पंजाब के रूप में अपने क्षेत्र को दोगुना कर दिया। मुल्तान और सिंध को इसमें जोड़ा गया। हालांकि, खिज्र खान के शासनकाल के दौरान दिल्ली सल्तनत का अधिकतम क्षेत्र बना रहा क्योंकि उन्होंने इसे बढ़ाने के लिए गंभीरता से प्रयास नहीं किया।

इटावा, कटेहर और कन्नौज को पुनः प्राप्त करने के उनके सीमित प्रयास विफल रहे। खिज्र खान ने तुर्की रईसों के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाई और उन्हें अपने जागीर के स्वामित्व का आनंद लेने की अनुमति दी। फिर भी, वे उससे असंतुष्ट रहे और कभी-कभी उनके खिलाफ विद्रोह उठने के लिए अपने पदों का इस्तेमाल किया। खिज्र खान ने एक और गलती की। उन्होंने अपने लकटों (प्रांतों) को शियों (जिलों) में विभाजित किया और जिला अधिकारियों को काफी स्वतंत्र शक्तियां दीं, जिसके परिणामस्वरूप स्थानीय या क्षेत्रीय वफादारी हुई।

इसलिए, अपने पूरे शासनकाल में, खिज्र खान को उन प्रमुखों से भी सटीक श्रद्धांजलि के लिए सैन्य अभियानों को करने के लिए मजबूर किया गया, जो औपचारिक रूप से उनके प्रति निष्ठा रखते थे। इस कार्य में, उन्हें अपने मंत्री ताज-उल-मुल्क द्वारा वफादारी से समर्थन दिया गया था। फिर भी, खिज्र खान स्थायी रूप से अपने जागीरदारों की विद्रोही प्रकृति को वश में करने में विफल रहा।

एक नापाक ने खुद को सारंग खान घोषित किया और पंजाब में विद्रोह कर दिया। हालांकि, वह हार गया था। उनके मुखिया जसरथ के नेतृत्व में खोखरों ने भी उत्तर-पूर्वी पंजाब में उन्हें लगातार परेशान किया। गुजरात, मालवा और जौनपुर के शासक दिल्ली को जीतने के इच्छुक थे, हालांकि कोई भी गंभीर प्रयास करने में विफल रहा। इस प्रकार, खिज्र खान ने ज्यादातर दिल्ली सल्तनत के क्षेत्र को बरकरार रखने में खुद को व्यस्त रखा जो उसने अपने शासनकाल की शुरुआत में हासिल किया था।

अपने अंतिम दिनों के दौरान, उसने मेवात पर हमला किया और कोटला के किले को नष्ट कर दिया। फिर, उन्होंने ग्वालियर राज्य के क्षेत्र का हिस्सा लूट लिया और इटावा तक आगे बढ़ गए, जिसके शासक ने अपनी आत्महत्या स्वीकार की। वहां से लौटते समय वह बीमार पड़ गया। वह दिल्ली पहुँचा लेकिन 20 मई 1421 ई. को उसकी मृत्यु हो गई।

खिज्र खान बुद्धिमान, न्यायप्रिय और उदार था और उन दिनों आम से मुक्त था। इसलिए, उनके व्यक्तिगत गुणों ने उन्हें अपनी प्रजा का स्नेह दिया। **फरिश्ता** ने लिखा- "लोग उसके शासन में खुश और संतुष्ट

नोट

थे और इसलिए युवा और बूढ़े, गुलाम और स्वतंत्र नागरिक सभी ने काले कपड़े पहनकर उनकी मृत्यु पर दुख व्यक्त किया।" लेकिन एक शासक के रूप में वह बहुत कुछ हासिल नहीं कर सके। वह देश की उन समस्याओं को हल करने में विफल रहे जो तुगलक वंश के पतन के बाद उत्पन्न हुई थीं और तैमूर के आक्रमण के बाद देश को आभासी अराजकता की स्थिति में छोड़ दिया था। दिल्ली की सल्तनत अपने समय के दौरान भारत के अन्य राज्यों पर चढ़ाई नहीं कर सकी और इसलिए, उत्तर के कुछ अन्य महत्वपूर्ण राज्यों में से एक थी।

3.5 मुबारक शाह

अपने पिता की मृत्यु के बाद, मुबारक खान बिना किसी विरोध के सिंहासन पर चढ़ गए। उसने शाह की उपाधि धारण की, खुत्बा को उसके नाम से पढ़ा और उसके नाम के सिक्के जारी किए। इस प्रकार, उन्होंने किसी भी विदेशी शक्ति की आत्महत्या स्वीकार नहीं की।

अपने पिता की तरह, मुबारक को भी जागीरदारों और रईसों के खिलाफ दंडात्मक अभियान चलाना था और उनसे राजस्व जमा करना था। उसने अपने राज्यपालों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित कर दिया ताकि यह साबित किया जा सके कि उनके जागीर या इक़्टा उनकी वंशानुगत संपत्ति नहीं थे, लेकिन सुल्तान की सहमति से आनंद लेने का अधिकार था।

इसका मतलब सुल्तान के अधिकार पर जोर देना था, जो निश्चित रूप से जागीरदारों और राज्यपालों को नाराज करता था, जिन्होंने बाद में तुगलक सुल्तानों की कमजोरी का फायदा उठाते हुए, अपने जागीर और प्रांतों को अपनी संपत्ति के रूप में माना था। इसने सुल्तान के लिए मुसीबत खड़ी कर दी, जिसे अपने नियंत्रण में रखने के लिए उसे अपने रईसों से लड़ना पड़ा। सुल्तान ने बदायूँ, इटावा, कटेहर, ग्वालियर, आदि पर आक्रमण किया, केवल इस उद्देश्य के लिए।

लेकिन इससे भी ज्यादा, मुबारक शाह को अपने विदेशी दुश्मनों का सामना करना पड़ा। उत्तर-पश्चिम में जसरथ से खोखरों के नेता, दक्षिण की ओर से मालवा के शासक और पूर्व की ओर से जौनपुर के शासक ने अपनी बारी में दिल्ली पर कब्जा करने की कोशिश की।

हालांकि, मुबारक उनके प्रयासों को विफल करने में सफल रहे। जसरथ ने कई बार सरहिंद, जलंधर और लाहौर पर हमला किया, लेकिन कोई भी सफलता हासिल करने में असफल रहा। मालवा के शासक हुसंग शाह ने कई बार ग्वालियर को जीतने का प्रयास किया, लेकिन इसे पकड़ने में असफल रहे और ग्वालियर दिल्ली इब्राहिम के अधीन रहा, जौनपुर के शासक, बयाना, कालपी और मेवात का दावा किया और कई बार उन्हें पकड़ने की कोशिश की लेकिन असफल रहे।

बल्कि, मार्च 1428 ई. में, इब्राहिम को बयाना के पास मुबारक शाह द्वारा एक घमासान लड़ाई में हराया गया और पीछे हटने के लिए मजबूर किया गया। मुबारक शाह की हत्या के बाद से ही मालवा के शासक हुसंग शाह कालपी पर कब्जा कर सकते थे।

नोट

काबुल के नायब-सूबेदार शैक अली ने भी मुबारक शाह की परेशानियों का फायदा उठाने की कोशिश की। उन्होंने सरसुती, अमरोहा और ताबरहिंद के विद्रोही राज्यपाल पुलाद का समर्थन किया और जलंधर, फिरोजपुर, लाहौर और मुल्तान के कुछ हिस्सों को लूट लिया। लेकिन, वह कई बार लड़ाइयों में पराजित हुआ और इसलिए, दिल्ली सल्तनत के किसी भी क्षेत्र पर कब्जा करने में विफल रहा।

मुबारक शाह के असंतुष्ट रईसों ने अपने वजीर, सरवर-उल-मुल्क के नेतृत्व में उनके खिलाफ एक साजिश रची और 19 फरवरी, 1434 ई. को उनकी हत्या करने में सफल रहे, जब वह नदी के किनारे अपने नए शहर मुबारकबाद के निर्माण की देखरेख कर रहे थे। यमुना।

मुबारक शाह सैय्यद वंश का शासक शासक था। उन्होंने दिल्ली सल्तनत को एक विदेशी शक्ति की नाममात्र की आत्महत्या से मुक्त किया और उसके नाम पर सिक्के जारी किए। वह अपने रईसों और जागीरदारों के विद्रोह को दबाने में सफल रहा। वह अपने विदेशी दुश्मनों के खिलाफ भी सफल रहा, जिनमें से प्रत्येक ने दिल्ली पर कब्जा करने की कोशिश की।

तेरह वर्षों तक वह अपने आंतरिक और बाहरी शत्रुओं के खिलाफ लड़े और दिल्ली सल्तनत के क्षेत्र को अक्षुण्ण रखने में सफल रहे, हालांकि, वे इसे आगे बढ़ाने में असफल रहे। लेकिन, मुबारक शाह उनकी सेवा करने के लिए निष्ठावान अधिकारियों और रईसों का चयन करने में विफल रहे और इसलिए, उनकी साजिश का शिकार हो गए।

सिवाय इसके कि वह सय्यद वंश के अन्य शासकों की तुलना में काफी सफल था। उसने एक शहर, मुबारकबाद और उसमें एक खूबसूरत मस्जिद बनवाई. उन्होंने अपने समकालीन विद्वान, याहिया-बिन-अहमद सरहिंदी को सुरक्षा प्रदान की, जिन्होंने अपनी उम्र के कालक्रम और फारसी कार्य में अपने पूर्ववर्तियों को तारिख-ए-मुबारकशाही के नाम से संकलित किया।

3.6 मुहम्मद शाह

मुबारक शाह ने अपने भाई के बेटे मुहम्मद-बिन-फरीद खान को अपना उत्तराधिकारी नामित किया था। फरीद खान अपनी हत्या के बाद सिंहासन पर चढ़ गया और मुहम्मद शाह की उपाधि धारण की। उसने खुद को एक अक्षम और समझदार शासक के रूप में साबित किया और इसलिए, अपने राजवंश के पतन का रास्ता तैयार किया।

अपने शासनकाल के पहले छह महीनों के दौरान, वज़ीर, सरवर-उल-मुल्क ने राज्य की सत्ता का आनंद लिया। वजीर ने अपने स्वयं के वफादार अधिकारियों और उन हिंदू जागीरदारों को महत्व दिया, जिन्होंने मुबारक शाह की हत्या में उनकी मदद की थी। हालांकि, डिप्टी कमांडर-इन-चीफ, कमल-उल-मुल्क सैय्यद राजवंश के प्रति वफादार रहे, अपने इरादों को गुप्त रखा और वज़ीर के खिलाफ रईसों का एक और समूह बनाया।

वजीर ने उसे बयाना में विद्रोह को दबाने के लिए भेजा। यही उसका अवसर साबित हुआ। एक बार जब उन्होंने सेना की कमान संभाली, तो उन्होंने वजीर को सत्ता से विस्थापित करने के लिए अन्य रईसों की अपनी योजना का खुलासा किया और फिर अपनी सेना के साथ राजधानी लौट आए।

नोट

वजीर ने सुल्तान की हत्या करने की कोशिश की लेकिन जैसा कि सुल्तान खुद वजीर के खिलाफ साजिश करने वाला पक्ष था, उसने पूरी सावधानी बरती। इसलिए, जब वज़ीर सुल्तान की हत्या करने गया, तब उसके अंगरक्षकों ने वज़ीर और उसके समर्थकों को मार डाला।

मुहम्मद शाह ने अब कमल-उल-मुल्क को अपना वज़ीर नियुक्त किया और स्वतंत्र रूप से कामुक सुख में लगे रहे। कमल-उल-मुल्क कोई अच्छा प्रशासक नहीं था। सुल्तान द्वारा राज्य के मामलों की उपेक्षा और वज़ीर की अक्षमता ने आंतरिक और विदेशी दोनों दुश्मनों को प्रोत्साहित किया। मालवा के शासक महमूद ने दिल्ली पर हमला किया। मुहम्मद शाह ने उनकी मदद के लिए मुल्तान के गवर्नर, बाहुल लोदी को बुलाया।

तलपत के पास दोनों के बीच लड़ाई ने कोई निर्णायक नतीजा नहीं निकाला। मुहम्मद शाह ने फिर शांति के लिए मुकदमा दायर किया और महमूद गुजरात के शासक द्वारा किए गए आक्रमण से अपनी ही राजधानी को खतरा होने के कारण वापस लौटने को तैयार हो गया। बाहुल लोधी ने लौटते समय उस पर हमला किया और कुछ लूट को पकड़ने में सफल रहा और अपने कुछ सैनिकों को कैद कर लिया।

मुहम्मद शाह ने अपने समय पर मदद के लिए बाहुल लोधी को सम्मानित किया, उन्हें उनका बेटा कहा, उन्हें "खान-ए-खाना" की उपाधि दी और पंजाब के बड़े हिस्से पर अपना आधिपत्य स्वीकार कर लिया। इसने कब्जा करने के लिए 1443 ई. में दिल्ली पर हमला करने वाले बाहुल लोदी की महत्वाकांक्षा को भड़काया। वह उस समय विफल रहा लेकिन फिर एक बेहतर अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

मुहम्मद शाह अपने शासनकाल के बाद के वर्षों के दौरान आंतरिक व्यवधान और विदेशी हमलों से अपने राज्य की रक्षा करने में विफल रहे। जौनपुर के शासक ने उनसे कुछ परगनों को छीन लिया, मुल्तान स्वतंत्र हो गया, प्रांतीय गवर्नरों ने वार्षिक श्रद्धांजलि अर्पित करने से परहेज किया और यहाँ तक कि दिल्ली के आस-पास बीस मील के दायरे में रहने वाले उन रईसों ने सुल्तान के प्रति असंवेदनशीलता की प्रवृत्ति का प्रदर्शन किया। इस प्रकार, मुहम्मद एक शासक के रूप में विफल रहे और उनके राजवंश का पतन उनके शासनकाल के दौरान शुरू हुआ। 1445 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

3.7 अला-उद-दीन आलम शाह

मुहम्मद शाह को उनके बेटे ने अला-उद-दीन आलम शाह के खिताब से नवाज़ा था। वह अकर्मण्य और कामुक था और खुद को सैय्यद वंश का सबसे कमजोर शासक साबित करता था। उसने अपने वज़ीर, हामिद खान से झगड़ा किया, बदायूं के लिए निकल गया और खुद को वहीं बस गया।

नोट

बाहुल्य लोदी ने 1447 ई. में एक बार फिर दिल्ली पर हमला किया, हालांकि फिर से असफल रहा। लेकिन हामिद खान ने कुछ पड़ोसी शासकों द्वारा दिल्ली पर जबरदस्त कब्जे को स्वीकार करते हुए, खुद नागौर के राज्यपाल, बाहुल लोदी और कयूम खान दोनों को आमंत्रित किया।

बहलुल लोदी पहले दिल्ली पहुंचे और इसलिए, क़ियाम खान वापस मुड़े। हामिद खान को उम्मीद थी कि बाहुल लोधी उसके हाथों की कठपुतली बन जाएगा। लेकिन दिल्ली पर शासन करने की महत्वाकांक्षा रखने वाले बहलुल लंबे समय तक किसी के साथ सत्ता साझा नहीं कर सके। उसने कैद किया और बाद में हामिद खान को मार डाला और 1450 ई. में राज्य की सभी शक्तियों पर कब्जा कर लिया। बाहुल ने अला-उद-दीन आलम शाह को दिल्ली आने के लिए आमंत्रित किया, जिसे उसने विनम्रता से मना कर दिया।

अपनी ओर से, बाहुल ने कभी भी बदायूं पर कब्जा करने का प्रयास नहीं किया। इसलिए, अला-उद-दीन ने 1476 ई. में अपनी मृत्यु तक बदायूं पर शासन किया, बाद में बदायूं में उनके दामाद और जौनपुर के शासक हुसैन शाह द्वारा कब्जा कर लिया गया था। इस प्रकार, अला-उद-दीन आलम शाह सैय्यद वंश का अंतिम शासक था। हालाँकि वह 1476 ईस्वी तक जीवित रहा, लेकिन दिल्ली के सिंहासन को बहुत पहले ही बाहुल लोधी को खो चुका था।

"इस प्रकार 37 वर्षों के अगोचर शासन के बाद सैय्यद वंश का अंत हो गया। मुल्तान की रियासत के रूप में उभरकर, यह बदायूं की रियासत के रूप में समाप्त हो गया। न तो राजनीतिक और न ही सांस्कृतिक रूप से, इसने मध्यकालीन भारत के इतिहास में सार्थक योगदान दिया। हालाँकि, यह दिल्ली साम्राज्य के विघटन और पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में एक अपरिहार्य चरण था।"

3.8 मुबारक शाह (सैय्यद वंश)

सैय्यद खिज्र खाँ ने मृत्यु से पूर्व अपने पुत्र मुबारक शाह को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। मुबारक शाह ने शाह की उपाधि धारण करके अमीरों व सरदारों की सर्व-सम्मति से सुल्तान का पद ग्रहण किया। अपने शासन काल में उसने भटिण्डा व दोआब क्षेत्र के विद्रोहों का दमन किया मगर वह नमक की पहाड़ियों के खोखर लोगों को दण्ड नहीं दे सका। उल्लेखनीय है कि वह पहला सुल्तान था जिसके काल में दिल्ली के दरबार में दो हिन्दू अमीरों का उल्लेख मिलता है।

अपने तेरह वर्ष के शासन काल में उसने मेवात, कटेहर, उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में सैनिक कार्यवाहियां की लेकिन यह किसी ठोस और वास्तविक उपलब्धि को पाने में असफल रहा। उसके आश्रय में प्रसिद्ध इतिहासकार याहिया-बिन-अहमद सरहिन्दी ने 'तारीखे-मुबारकशाही' में लिखा है कि- "मुबारक शाह का काल अशान्ति एवं विद्रोह का काल था, इसलिए उसका पूर्ण समय विद्रोहों को दबाने में ही व्यतीत हो गया।"

उसमें धर्मान्धता का नाम भी नहीं था। उसने दिल्ली के क्षत्रियों को उदारता पूर्ण संरक्षण दिया और ग्वालियर के हिन्दुओं को अत्याचार से बचाया। यमुना के तट पर उसने 'मुबारक बाद' नामक एक नगर

बसाया, जिसकी जामा-मस्जिद बहुत सुन्दर थी। 19 फरवरी, 1434 ई. को उसके एक सरदार सरवर-उल-मुल्क ने एक षड्यन्त्र द्वारा मुबारक शाह की हत्या करवा दी।

नोट

3.9 मुहम्मद शाह (1434-43 ई.)

मुबारक शाह के पश्चात् उसका भतीजा फरीद खाँ के नाम से सुल्तान बना. 6 महीने तक वास्तविक सत्ता वजीर सरवर-उल-मुल्क के सहयोग से वजीर का वध करवा कर उससे मुक्ति प्राप्त कर ली।

मुहम्मदशाह के काल में दिल्ली सल्तनत में अराजकता व कुव्यवस्था व्याप्त रही। जौनपुर के शासक ने सल्तनत के कई जिले अपने अधीन कर लिए।

मालवा के शासक महमूद खिलजी ने तो दिल्ली पर ही आक्रमण करने का साहस कर लिया। लाहौर और मुल्तान के शासक बहलोल खाँ लोदी ने सुल्तान की सहायता की।

सुल्तान ने उसे 'खान-ए-खाना' की उपाधि दी और साथ ही उसे अपना पुत्र कह कर भी पुकारा। सुल्तान की स्थिति बहुत दुर्बल हो गई। यहाँ तक कि दिल्ली से बीस 'करोह' की परिधि में अमीर उसके विरोधी हो गए। 1444 ई. में मुहम्मद शाह की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र अलाउद्दीन 'आलमशाह' के नाम से गद्दी पर बैठा।

3.10 आलम शाह (1445-51 ई.)

आलम शाह अपने देश का सबसे अयोग्य शासक साबित हुआ। आलम शाह के काल में दिल्ली सल्तनत, दिल्ली शहर और कुछ. आस-पास के गाँवों तक रह सीमित हो गई।

बहलोल लोदी (लाहौर का गवर्नर) के भय के कारण आलम शाह अपनी राजधानी दिल्ली कसे हटा कर बदायूँ ले। गया और यहाँ वह भोग-विलास में डूब गया।

उसके मन्त्री हमीद खाँ ने बहलोल लोदी को आमन्त्रित किया, जिसने कि दिल्ली पर अधिकार कर लिया। कुछ समय तक बहलोल खाँ लोदी ने आलम शाह के प्रतिनिधि के रूप में कार्य किया।

1451 ई. में आलमशाह ने बहलोल लोदी को दिल्ली का राज्य पूर्णतः सौंप दिया और स्वयं बदायूं की जागीर में रहने लगा. वहीं पर 1476 ई में उसकी मृत्यु हुई।

इस प्रकार 37 वर्ष के अकुशल शासन के बाद सैय्यद वंश का अन्त हुआ और लोदी वंश की नींव पड़ी।

3.11 सारांश

सैय्यद खिज्र खाँ इब्न मलिक (1414-21 ई.) जब खिज्र खाँ ने दिल्ली पर अधिकार किया, उस समय उसकी स्थिति अत्यन्त कमजोर थी और इसलिए उसने सुल्तान की उपाधि ग्रहण न की और 'रेयत-ए-आला' के नाम से ही संतुष्ट रहा।

उसके शासन काल में पंजाब, लाहौर व मुल्तान पुनः सल्तनत के अधीन हो गये. अपने समय में खिज्र खाँ ने कटेहर, इटावा, खोर, चलेसर, बयाना, मेवात, बदायूँ, आदि में विद्रोहों को दबाया। इस काम में उसके राजभक्त मन्त्री ताजुल्मुल्क ने उसकी बहुत सेवा की। अपने इन अभियानों के दौरान ही 13 जनवरी, 1421 ई. को ताजुल्मुल्क और 20 मई, 1421 ई. को खिज्र खाँ की मृत्यु हुई।

नोट

खिज्र खाँ को स्थाई रूप से सल्तनत का विस्तार करने में सफलता नहीं मिली। उसका प्रशासन उदार व न्याय संगत था। वह सैय्यद वंश का सर्वाधिक योग्य शासक था।

3.12 अभ्यास प्रश्न

1. सैय्यद वंश का इतिहास पर संक्षेप में लिखें।
2. खिज्र खान के शासन का मूल्यांकन प्रस्तुत करें।
3. मुबारक शाह कौन था?
4. मुहम्मद शाह पर टिपण्णी लिखिए।
5. अला-उद-दीन आलम शाह का वर्णन करें॥
6. मुबारक शाह (सैय्यद वंश) का वर्णन कीजिए।

3.13 संदर्भ पुस्तकें

- मध्यकालीन भारत (दिल्ली सल्तनत)– रहीससिंह, पियर्सन ऐजुकेशन इंडिया।
- लेटर मिडाईवल इंडिया, ए हिस्ट्री ऑफ दी मुगल्स– अवध बिहारी पांडे, सेन्ट्रल बुक डिपो।
- मध्यकालीन भारत का इतिहास– पार्थिव कुमार, रीतु पब्लिकेशन्स।
- मध्यकालीन भारत का इतिहास : सल्तनत काल– मोहित, राजीव कुमार, रजत प्रकाशन।
- मध्यकालीन भारत का इतिहास– शैलेन्द्र शैन्गर, अटलांटिक पब्लिशर्स।

नोट

अध्याय-4

लोदी वंश

संरचना (Structure)

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 बहलोल लोदी (1451-1489)

4ण्4 हामिद खाँ

4.5 जौनपुर

4.6 सिकन्दर शाह (1489-1517)

4.7 इब्राहीम लोदी (1517-26)

4.8 सारांश

4.9 शब्दकोश

4.10 अभ्यास प्रश्न

4.11 संदर्भ पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे–

- बहलोल लोदी के प्रारंभिक जीवन तथा शासन प्रबंध से संबंधित बातों की जानकारी प्राप्त करने में;
- सिकन्दर शाह के शासन प्रबंध की जानकारी;
- इब्राहीम लोदी के शासन व्यवस्था संबंधी बातों को जानने हेतु।

4.2 प्रस्तावना

लोदी वंश का संस्थापक बहलोल लोदी था। बहलोल का दादा मलिक बहराम फिरोज तुगलक के शाासन में मुल्तान चला गया। दिल्ली की गद्दी पर बहलोल को बिठाने में हामिद खाँ का भी हाथ था। यह भी सच है कि बहलोल ने हामिद खाँ से सुल्तान बनने को कहा क्योंकि वह केवल इतने से संतुष्ट न हुआ।

यद्यपि बहलोल सिंहासनारूढ़ हो चुका था तथापि जौनपुर के शासक महमूद शाह शर्की ने उसे हटाने का प्रत्यन किया। बहलोल केवल लोदी वंश का संस्थापक ही नहीं था, वरन् इस वंश की शक्ति व वैभव का सारा उत्तरदायित्व भी उसी पर था।

बहलोल लोदी के बाद उसका पुत्र निजाम खाँ सिकन्दर शाह की उपाधि ग्रहण करके सिंहासनारूढ़ हुआ। सिकन्दर शाह को अपना सुल्तान मानने में अमीरों व सरदारों को संकोच था, क्योंकि उसकी माता किसी स्वर्णकार की पुत्री थी। इसलिए उसका पुत्र एक राजकुमार की अपेक्षा साधारण व्यक्ति था।

सिकन्दर शाह की मृत्यु के बाद उसका सबसे बड़ा पुत्र इब्राहीम 21 नवम्बर, 1517 ई. को गद्दी पर बैठा। इसमें उसे सारे अफगान सरदारों की निर्विरोध स्वीकृति मिली थी और उसने इब्राहीम शाह की उपाधि ग्रहण की।

4.3 बहलोल लोदी (1451-1489)

प्रारम्भिक जीवन : बहलोल लोदी, लोदी वंश का संस्थापक था जो 1451 से 1526 ई. तक रहा। वह लोदी जाति के साहू खैल वर्ग से था। बहलोल का दादा मलिक बहराम फिरोज तुगलक के शासन काल में मुल्तान चला गया था। उसने वहाँ के प्रांताध्यक्ष मलिक मरदान दौलत के यहाँ सेवा स्वीकार कर ली थी। मलिक बहराम के पाँच पुत्र थे किन्तु उनमें से केवल दो (मलिक सुल्तान शाह और मलिक काला) प्रसिद्ध हुए। बहलोल मलिक काला का पुत्र था जिसने जसरथ को हरा कर अपनी स्वतन्त्र रियासत बना ली थी। 1419 ई. में उसके चाचा सुल्तान शाह को खिज्र खाँ ने सरहिंद का प्रांताध्यक्ष नियुक्त किया था और उसे इस्लाम खाँ की उपाधि प्रदान की थी। फरिश्ता हमें बताता है कि इस्लाम खाँ ने बहलोल के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया था और उसने अपने पुत्रों के होते हुए भी बहलोल को उसकी योग्यता के कारण अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया। इस्लाम खाँ की मृत्यु के बाद बहलोल सरहिन्द का प्रांताध्यक्ष बन गया। बहलोल को लाहौर को भी अपने आधीन रखने की अनुमति मिल गई। इसलिए सेनाओं की शक्ति के कारण बहलोल सैय्यद साम्राज्य का एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रांताध्यक्ष बन गया। जब मालवा के महमूद शाह खिलजी ने मुहम्मद शाह को आक्रमण की धमकी दी थी, उस समय वह अपने स्वामी की सहायता के लिए आया। अपनी चतुराई से वह अपने को मालवा की सेना पर विजेता प्रदर्शित करने में सफल हुआ। मुहम्मद शाह उससे इतना प्रसन्न हो गया था कि उसने उसे अपना पुत्र मान लिया और उसे खानखाना की उपाधि प्रदान की। बहलोल को अवसर तब मिला जबकि आलम शाह ने 1448 ई. में

नोट

स्थायी रूप से बदायूँ में रहने का निर्णय कर लिया और इससे दिल्ली में गड़बड़ मच गई। हामिद खाँ ने बहलोल को आमन्त्रित किया था और उसे नगर की कुंजियाँ सौंप दी थी। इसमें बहलोल ने आलम शाह की स्वीकृति भी प्राप्त की थी। इस प्रकार 19 अप्रैल 1451 ई. को बहलोल दिल्ली का सुल्तान हो गया और 1489 ई. में अपनी मृत्यु तक वह सुल्तान बना रहा। यह कहा जाता है कि एक दिन बहलोल, जबकि वह अपने चाचा की सेवा में था, समाना गया और वहाँ वह सैय्यद अएन, एक प्रसिद्ध दर्वेश, के पास अपने मित्रों के साथ पहुंचा। दर्वेश ने कहा, "क्या कोई ऐसा मनुष्य है जो उससे दो हजार टंके में दिल्ली का साम्राज्य लेना चाहता है?" बहलोल ने उसी समय दर्वेश को उतना धन दे दिया जिसने कहा, "तुझे दिल्ली का साम्राज्य प्राप्त हो।" यह कही हुई भविष्यवाणी आगे चलकर सत्य सिद्ध हुई।

4.4 हामिद खाँ

यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि दिल्ली की गद्दी पर बहलोल को बिठाने में हामिद खाँ का भी हाथ था। यह भी सच है कि बहलोल ने हामिद खाँ से सुल्तान बनने को कहा क्योंकि वह केवल इतने से संतुष्ट न हुआ कि हामिद खाँ सेनाओं का निदेशकर्ता मात्र या उसके आदेशों के पालनकर्ता की भाँति रहे। बहलोल ने उसके प्रति अगाध सम्मान प्रदर्शित भी किया। फिर भी बहलोल ने हामिद खाँ के निष्कासन का निश्चय किया और यह उद्देश्य प्राप्त करने के लिए उसने एक योजना भी बनाई। उसने अपने अफगान साथियों से हामिद खाँ की उपस्थिति में उद्दण्डता प्रकट करने को कहा और "ऐसा आचरण प्रदर्शित करने के लिए कहा जिसमें अत्यन्त बुद्धिशून्यता व साधारण सूझबूझ का सर्वथा अभाव टपकता हो, जिससे वह उनको परम मूर्ख समझ बैठे और उनके प्रति उसके मन में कोई शंका अथवा भय न रह जाए।" बहलोल के अफगान साथियों ने वैसा ही किया जैसा उनसे कहा गया था। सशस्त्र मनुष्यों ने श्रोताभवन में इस मिथ्या तर्क के आधार पर भीड़ लगा ली कि सारे सैनिक व जाति के अन्य सदस्य समान हैं। उनके व्यवहार ने हामिद खाँ को इस विषय से सहमत कर दिया कि वह मूर्खों से निपट रहा है। नगर में उठने वाले किसी भी उपद्रव को कुचलने के लिए अफगान सेनाओं की संख्या काफी बड़ी थी। दरबार में भी उनकी संख्या इतनी थी कि उससे बहलोल कोई भी हिंसात्मक कार्य कर सकता था। एक दिन जब बहलोल हामिद खाँ के घर दर्शन हेतु पहुँचा, तो उसके साथियों ने द्वारपाल से झगड़ा कर लिया और उससे प्रार्थना की कि वह उन्हें अन्दर चला जाने दे। हामिद खाँ को इन लोगों के द्रोह की कोई आशंका न थी, इसलिए उसने अपनी अनुमति दे दी। परन्तु जब बहलोल के चचा कुतुब खाँ ने अपनी जेब

में छिपा कर रखी हुई बेड़ियाँ निकाल कर उससे कहा कि कुछ समय तक उसका अज्ञात रूप में रहना ही राज्य के लिए उपयोगी है तो वह आश्चर्य में पड़ गया। किन्तु उसकी सेवाओं का ध्यान करते हुए उसकी जिन्दगी बख्श दी गई। परिणाम यह हुआ कि हामिद खाँ पूर्णतया अदृश्य हो गया।

अपनी शक्ति बढ़ाने के विचार से बहलोल ने उपहार व पुरस्कार बाँटकर सेना का विश्वास प्राप्त करना चाहा। अमीरों को उनके वर्गानुसार पदोन्नति की प्रतिज्ञाओं द्वारा अपनी ओर कर लिया गया।

4.5 जौनपुर

यद्यपि बहलोल सिंहासनारूढ़ हो चुका था, तथापि जौनपुर के शासक महमूद शाह शर्की ने उसे हटाने का प्रयत्न किया। महमूद शाह दिल्ली की ओर बढ़ा और उस ने बहलोल के बड़े पुत्र ख्वाजा बयाजिद को घेर लिया जो उस समय दिल्ली का कार्य संभाल रहा था। महमूद शाह दिल्ली की ओर बढ़ते हुए लगभग 30 मील के निकट पहुंचा जबकि बहलोल उसकी रक्षा करने में सफल हुआ। दरिया खाँ लोदी, जो जौनपुर के महमूद शाह की सहायता कर रहा था, को उसकी सहायता छोड़ने का प्रलोभन सफल हुआ। उसके जाने के बाद जौनपुर की सारी सेना का साहस टूट गया और वह भाग निकली। इसलिए बहलोल लोदी को सिंहासन से हटाने के लिए जौनपुर के शासक महमूद शाह का प्रयत्न निष्फल रहा।

जौनपुर के महमूद शाह शर्की की पराजय का शत्रुओं व मित्रों दोनों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। इससे बहलोल की स्थिति दृढ़ हो गई। उसके शत्रुओं व आलोचकों के मुख बन्द हो गए। बहुत से सरदारों व जागीरदारों ने उससे डरकर उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। बहलोल मेवात की ओर बढ़ा और वहाँ अहमद शाह ने आधिपत्य स्वीकार कर लिया जिसे 7 परगनों से वंचित कर दिया गया। संभल के प्रांताध्यक्ष दरिया खाँ लोदी के साथ उस पर द्रोह का आरोप होते हुए भी दयापूर्ण व्यवहार किया गया और उससे केवल 7 परगने छोड़ने को कहा गया। ईसा खाँ को अपना समस्त अधिकार जमाए रखने की आज्ञा मिल गई। साकेत के प्रांताध्यक्ष मुबारक खाँ के साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया गया। कुछ संकोच के उपरान्त रेवाड़ी के कुतुब खाँ ने भी आधीनता स्वीकार कर ली। इटावा, चन्दवार व दोआब के अन्य जिलों के अध्यक्षों ने भी बहलोल की सत्ता स्वीकार कर ली। 1472 ई. में बहलोल हुसैन शाह संगाह को अपनी आधीनता में लाने के लिए मुल्तान की ओर बढ़ा, जो उस छोटे से राज्य में अपने पिता का स्थान ग्रहण किए हुए था।

बहलोल को अपना बहुत-सा समय जौनपुर के विरुद्ध संघर्ष करने में व्यतीत करना पड़ा और अन्त में वह वहाँ की स्वाधीनता कुचलने व उस प्रान्त को अपने राज्य में मिलाने में सफल हुआ।

नोट

यह पहले से ही कहा जा चुका है कि महमूद शाह ने शुरू में बहलोल को हटाने का एक निष्फल प्रयत्न किया था। अपनी रानी के उकसाने पर जो बदायूँ के आलम शाह की पुत्री थी, उसने दिल्ली में प्रवेश करने का दूसरा प्रयत्न किया और उसी उद्देश्य से इटावा में भी प्रवेश किया। परन्तु एक संधि हुई और उसमें यह निश्चय किया गया कि दोनों पक्ष उसी क्षेत्र के स्वामी बने रहेंगे जो उनके पूर्ववर्तियों के पास चला आ रहा है। बहलोल लोदी को वे हाथी वापस करने पड़े जो उसने पिछले युद्ध में पकड़ रखे थे। महमूद शाह जूना शाह को हटाने पर राजी हो गया। संधि की शर्तों का पालन करते हुए बहलोल ने शम्साबाद पर अधिकार करने की चेष्टा की जो कि शासक ने जूना खाँ को दे दिया था। इसलिए जौनपुर की सेनाओं ने बहलोल का विरोध किया जिसमें कुतुब खाँ पकड़ लिया गया। परन्तु इसी समय 1479 ई. में महमूद शाह की मृत्यु हो गई और उसके पुत्र भिकन को मुहम्मद शाह की उपाधि देकर गद्दी पर बैठा दिया गया। उसने बहलोल के साथ संधि कर ली व उसकी शम्साबाद पर अधिकार जमाने की बात स्वीकार कर ली। जौनपुर में क्रान्ति हो गई जिसके फलस्वरूप जौनपुर की गद्दी हुसैन खाँ को मिल गई। यह नया शासक एक विलक्षण जीव था जो अपनी सारी आयु भर बड़े उत्साह के साथ बहलोल के विरुद्ध संग्राम करता रहा। हुसैन खाँ व बहलोल के बीच चार वर्ष के लिए संधि हो गई, परन्तु वह सारहीन सिद्ध हुई। 1473 ई. में जौनपुर का हुसैन खाँ एक बड़ी सेना के साथ अपनी पत्नी जलीला द्वारा उकसाये जाने पर, दिल्ली की ओर बढ़ा। बहलोल खतरे से इतना डर गया कि उसने मालवा के महमूद खिजली द्वितीय से सहायता माँगी। मालवा से कोई भी सहायता आने से पूर्व ही हुसैन खाँ यमुना तट के निकट पहुँच गया। बहलोल इस आक्रमणकारी से अत्यन्त आकर्षक शर्तों पर संधि करने पर तैयार हो गया, परन्तु हुसैन खाँ ने उसकी सब शर्तों को ठुकरा दिया। इसके फलस्वरूप शत्रु से लड़ने के लिए बहलोल राजधानी से बाहर आया। हुसैन खाँ की शिविर अरक्षित अवस्था में पड़ा था। नदी को पार करके बहलोल अपनी सेना के साथ उस पर टूट पड़ा। जब अफगान लोग वास्तव में उसके शिविरों में लूटमार करने लगे, तो हुसैन खाँ ने भाग जाने का निश्चय किया। उसके हरम की स्त्रियाँ, यहाँ तक कि जलीला भी पकड़ ली गई। लेकिन बहलोल ने उन्हें कोई भी हानि न पहुंचाते हुए उदारता के साथ जौनपुर भिजवा दिया।

तीन वर्षों के लिए फिर युद्धविश्रान्ति की व्यवस्था की गई। उसके बाद हुसैन खाँ ने इटावा पर कब्जा कर लिया और एक लाख घोड़ों व 100 हाथियों की सेना के साथ दिल्ली की ओर चला। बहलोल ने सन्धि करने के लिए एक बार फिर अत्यन्त नम्र सुझाव प्रस्तुत किए, परन्तु हुसैन खाँ ने उन्हें फिर अस्वीकार कर दिया। जौनपुर की सेना को परास्त करने में बहलोल एक बार फिर सफल

हुआ। इसके होते हुए भी, हुसैन खाँ फिर बहलोल लोदी के विरुद्ध बढ़ा। दोनों सेनाएँ दिल्ली से 25 मील दूरी पर मिलीं। हुसैन खाँ इस बार फिर पराजित हुआ, परन्तु उसने समान शर्तों पर सन्धि कर ली।

हुसैन खाँ ने एक बार फिर प्रयत्न किया और मार्च 1479 ई. में वह यमुना के निकट तक आ पहुँचा। उसके अभियानों में यह सबसे अधिक भयंकर था, परन्तु जब उसे गंगा के पूर्व में आने वाले जिलों में अपना अधिकार रखने की मान्यता मिल गई तो उसने बहलोल के साथ एक सन्धि कर ली। ऐसे सौजन्यपूर्ण व्यवहार को सर्वथा भुलाकर बहलोल ने जौनपुर की लौटती हुई सेना पर आक्रमण कर दिया और हुसैन खाँ का कोष, सामान व हाथी छीन लिए गए। अब भाग्य बहलोल के पक्ष में था। उसने जौनपुर की साहसहीन सेना का पीछा किया और कम्पिल, पटियाली, शम्साबाद, सुकेता, कोइल, मरहरा व जलेसर के परगनों पर अधिकार कर लिया। हुसैन खाँ ने बहलोल का मुकाबला करने का प्रयास किया परन्तु वह हार गया। वह बहलोल द्वारा विजित प्रदेशों पर अधि कार करने को मान्यता देने पर राजी हो गया। हुसैन खाँ रापरी लौट गया और बहलोल दिल्ली को, परन्तु अपने खोये हुए प्रदेश को फिर से पाने के लिए हुसैन एक बार फिर क्षेत्र में आया। लेकिन सेन्हा पर बहलोल ने उसे फिर परास्त कर दिया। उसने जितनी पराजयों का अनुभव किया उनमें यह उसकी सबसे बड़ी पराजय बताई गई है। बहलोल के हाथों होने वाली लूटमार व उसको प्राप्त होने वाली विजय ने दिल्ली की उच्चता स्थापित कर दी। बहलोल ने स्वयं जाकर रापरी पर हुसैन खाँ को परास्त किया। इटावा पर अधिकार जमाकर बहलोल हुसैन खाँ पर आक्रमण करने के लिए बढ़ा जो रायगाऊं खागा के स्थान पर उसका मुकाबला करने के लिए मुड़ा था। परन्तु हुसैन खाँ कन्नौज की ओर भागने पर विवश हो गया। बहलोल सीधे जौनपुर की ओर बढ़ा। बहलोल ने उसका पीछा किया और रहाब के तट के निकट उसे पकड़ लिया। उसने वहाँ उसकी एक पत्नी तक को पकड़ लिया। फिर बहलोल जौनपुर पहुँचा और उस पर अपना अधिकार करके वहाँ का प्रबन्ध मुबारक खाँ लोहानी को (वहाँ का प्रांताध्यक्ष बनाकर) सुपुर्द कर दिया।

बहलोल बदायूँ भी गया जिस पर 1478 ई. में आलम शाह की मृत्यु से हुसैन खाँ ने अपना नाम मात्र का अधिकार जमा रखा था। हुसैन खाँ बहलोल की अनुपस्थिति से लाभ उठा कर पुनः जौनपुर पहुंचा व वहाँ मुबारक खाँ पीछे हटने पर बाध्य हो गया। कुछ समय के लिए बहलोल के अधिकारी लोग विचार-विनिमय का चक्र चलाते रहे और इसी बीच में बहलोल ने बदायूँ से वापस आकर जौनपुर पर पुनः कब्जा कर लिया। हुसैन खाँ बिहार भाग गया तथा बहलोल की सेनाओं ने उसका पीछा किया। 1486 ई. में बहलोल ने अपने सबसे बड़े पुत्र को जौनपुर की गद्दी पर बिठा दिया।

नोट

बहलोल का मूल्यांकन (Estimate of Bahlol)**:** बहलोल केवल लोदी वंश का संस्थापक ही नहीं था, वरन् इस वंश की शक्ति व वैभव का सारा उत्तरदायित्व भी उसी पर था। वह उन विभिन्न सरदारों को दबाने में सफल हुआ, जिन्होंने केन्द्रीय शक्ति का उल्लंघन किया था। वह साम्राज्य की शक्ति को दृढ़ नींव पर रखने में भी सफल रहा। उसकी सबसे बड़ी सफलता जौनपुर को अपने साम्राज्य में फिर से मिलाना है, जो बहुत वर्षों से उसकी सत्ता का विरोध कर रहा था।

अपना बहुत समय युद्धों में व्यतीत करने में बहलोल विवश था और इसलिए असैनिक शासन प्रबन्ध की ओर वह बहुत कम ध्यान दे सका। बहलोल वीर, उदार, दयालु व ईमानदार था। वह आडम्बर में विश्वास न रखता था। उसका दृष्टिकोण यह था कि जब लोग उसे राजा समझते हैं तो जनता को इसी विषय से प्रभावित करने के लिए अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। वह निर्धनों के प्रति अत्यन्त दयावान था और कोई भी भिखारी उसके द्वार से निराश होकर नहीं जा सकता था। वह न्याय-प्रेमी था और लोगों की शिकायतें स्वयं सुनता था। वह युद्ध में प्राप्त वस्तुओं को अपने सैनिकों के बीच विभक्त कर देता था। अपने अफगान साथियों से व्यवहार करते समय वह अपनी किसी उच्चता का प्रदर्शन नहीं करता था। तारीखे दाऊदी के लेखक के अनुसार, "सामाजिक सम्मेलनों के अवसर पर वह कभी सिंहासन पर नहीं बैठा और न उसने अपने सरदारों को खड़ा रहने दिया; आम दरबार तक में वह सिंहासन पर न बैठकर एक गलीचे पर बैठता था। जब कभी वह अपने किसी अमीर को 'फरमान' लिखता था, तो उसको

'मसनदे आली' शब्द से सम्बोधित करता था; और यदि वे उससे रुष्ट हो जाते तो शांत करने के लिए वह इतना प्रयत्न करता था कि स्वयं उनके घर जाता था, अपनी कमर पर बँधी तलवार निकाल कर उनके सामने रख देता था, यही नहीं, अपितु कभी-कभी वह सिर से पगड़ी उतार कर क्षमा याचना करता और कहता, "यदि तुम मुझको इस पद के योग्य नहीं समझते हो, तो किसी और को चुन लो और मुझे कोई दूसरा कार्य सौंप दो।" वह अपने सरदारों तथा सैनिकों के साथ भाईचारा निभाता था और यदि कोई बीमार पड़ जाता, तो स्वयं जाकर उसकी पूछताछ करता था।"

4.6 सिकन्दर शाह (1489-1517)

बहलोल लोदी के बाद उसका पुत्र निजाम खाँ सिकन्दर शाह की उपाधि ग्रहण करके सिंहासनारूढ़ हुआ। सिकन्दर शाह को अपना सुल्तान मानने में अमीरों व सरदारों को कुछ संकोच था, क्योंकि उसकी माता किसी स्वर्णकार की पुत्री थी और इसलिए उसका पुत्र एक राजकुमार की अपेक्षा

साधारण व्यक्ति था। परन्तु यह संकोच हट गया और वह सिंहासन पर बैठा। सिकन्दर शाह एक कट्टर मुसलमान था और सिंहासन के लिए उसका चुनाव कदाचित् इसी कारण किया गया होगा।

1489 में दशा (Condition **पद 1489):** सिंहासनारूढ़ होने के समय सिकन्दर शाह की शक्ति बहुत दृढ़ न थी क्योंकि सरदारों व जागीरदारों की एक बहुत बड़ी संख्या अपने-अपने क्षेत्रों में अत्यन्त शक्ति संगठित किए हुए थी। 'वाकयात-ए-मुश्ताकी' का लेखक उस समय की दशा का वर्णन करते हुए लिखता है, "समस्त देश का आधा भाग फरमूलियों को और शेष आधा भाग दूसरी अफगान जातियों को जागीर में दे दिया गया। इस समय लोहानी एवं फरमूली प्रमुख थे। सरवानियों का सरदार आजम हुमायूँ था और लोदियों के चार सरदार थे–महमूद खाँ, जिसको जागीर में कालपी मिला था; मियाँ आलम जिसको इटावा व चन्दवार दिए गए थे; मुबारक खाँ जिसकी जागीर में लखनऊ था; और दौलत खाँ जिसके अधिकार में लाहौर था। साहू खैलों के सरदार हुसैन खाँ तथा खान जहान थे और यही दोनों उन पूर्वजों की सन्तान थे जिनके वंश में बहलोल हुआ; फिरोज खाँ का पुत्र हुसैन खाँ था तथा कुतुब खाँ लोदी साहू खैल, जो सुल्तान बहलोल के समय में हुआ।

"सारन और चम्पारन के जिले मियाँ हुसैन के अधिकार में थे; अवध, अम्बाला तथा होध ना मियाँ मुहम्मद काला पहाड़ के; कन्नौज मियाँ गदाई के; शम्साबाद, थानेसर और शाहाबाद मियाँ इमाद के; मरहरा मियाँ मुहम्मद के भाई तातार खाँ के; तथा हरियाना, दसुआ एवं इनके साथ के परगने ख्वाजा शेख सैय्यद के अधिकार में थे।

सैफ खाँ अचा-खैल सुल्तान सिकन्दर के समय बड़े सरदारों में से था, उसके आधीन 6,000 घुड़सवार थे और वह कड़ा के जागीरदार आजम हुमायूँ का, जो प्रतिवर्ष कुरान की 2,000 प्रतियाँ खरीदता था और जिसके आधीन 45,000 अश्वारोही थे तथा 700 हाथी थे, सचिव था; इसके अतिरिक्त 4,000 अश्वारोहियों का स्वामी दौलत खाँ खानो; इतने ही अश्वारोहियों का स्वामी अली खाँ उशी, 6,000 अश्वारोहियों की सेना का अधिपति फिरोज खाँ सारवानी तथा अन्य प्रमुख सरदार थे। अन्य सरदारों में 25,000 घुड़सवार बाँटे गए थे। जमाल खाँ लोदी सारंग खानी के पुत्र अहमद खाँ की अधीनता में भी, जब उसको जौनपुर में नियुक्त किया गया, 20,000 अश्वारोही थे।"

आलम खाँ के विरुद्ध कार्रवाई (Action against Alam Khan)**:** सिकन्दर शाह अपने चाचा आलम खाँ के विरुद्ध कार्रवाई करने पर बाध्य हो गया जो रापरी व चन्दवार में स्वाधीन होने के प्रयत्न कर रहा था। जब रापरी में उसको घेर लिया गया, तो वह वहाँ से भाग निकला और उसने पटियाली में ईसा खाँ के पास शरण ली जिसने सिकन्दर शाह की माता के हाथों अपमानित होने

नोट

पर द्रोह कर दिया था। सिकन्दर ने रापरी की जागीर खानखाना लोहानी को दे दी और स्वयं इटावा चला गया। वहाँ उसने प्रान्तों के शासन-प्रबन्ध को पुनर्गठित करने और उन लोगों से समझौता करने में सात महीने व्यतीत किए जो उसका सिंहासनारोहढ़ एक वास्तविक तथ्य स्वीकार करने पर उद्यत थे। सिकन्दर शाह आलम खाँ को ईसा खाँ का साथ छोड़ने का प्रलोभन देने में सफल हुआ और उसने उसे इटावा की जागीर भी प्रदान की। सिकन्दर शाह सवयं ईसा खाँ के विरुद्ध बढ़ा और उसको परास्त किया। राजा गणेश ने भी उसकी अधीनता मान ली व उसको पटियाली की जागीर दे दी गई।

बारबक शाह के विरुद्ध कार्रवाई (Action against Barbak Shah)**:** सिकन्दर शाह ने बारबक शाह के साथ समझौता करने का प्रयत्न किया। बारबक शाह उसका भाई तथा जौनपुर का शासक था। वह उसे अपनी आधीनता में लाना चाहता था। हुसैन खाँ शर्की ने बारबक शाह को अपने भाई पर आक्रमण करने की प्रेरणा दी, परन्तु जब सिकन्दर शाह को इसका ज्ञान हुआ तो वह बारबक शाह के विरुद्ध बढ़ा। हार कर बारबक शाह बदायूँ भाग गया। उसका वहां तक पीछा किया गया और विवश होकर उसे आत्मसमर्पण करना पड़ा। इस पर भी सिकन्दर शाह ने बारबक शाह के साथ बहुत सज्जनता का व्यवहार किया और उसे एक बार फिर जौनपुर की गद्दी पर बिठा दिया। अब उसके हाथों में बहुत कम शक्ति रही थी क्योंकि सिकन्दर शाह ने उसकी जागीर उपने मुख्य साथियों में बाँट दी और बारबक शाह के मकान में अपने गुप्त अनुचर भी रख दिए।

जौनपुर व हुसैन खाँ के विरुद्ध कार्रवाई (Action against Jaunpur and Husain Khan)**:** कुछ समय बाद जौनपुर में एक गम्भीर विद्रोह उठ खड़ा हुआ जहाँ हिन्दू भूमिपतियों ने एक लाख घुड़सवार व पैदल सेना एकत्रित करके प्रांताध्यक्ष के भाई शेर खाँ की हत्या कर डाली। उन्होंने कारा के प्रांताध्यक्ष को भी पकड़कर बन्दी बना लिया। जौनपुर का बारबक शाह इस स्थिति को न संभाल सका। विद्रोहियों ने शाही सेना का विरोध किया परन्तु उनको हरा दिया गया और वहाँ से भगा दिया गया। सिकन्दर ने अपने भाई को पुनः पदारूढ़ किया और अवध की ओर बढ़ा। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि बारबक शाह विद्रोहियों के साथ कुछ सम्बन्ध बना रहा है और हुसैन शाह शर्की से भी उसकी बात चल रही है, सिकन्दर शाह ने उसे बन्दी बना लिया। जौनपुर से सिकन्दर चुनार की ओर चला जहाँ हुसैन खाँ के बहुत से सरदार व अमीर एकत्रित थे। उसने उन्हें पराजित तो कर दिया परन्तु चुनार का घेरा डालने में असमर्थ रहा।

अपनी सारी सेना के साथ, जो वह संगठित कर सका और 200 हाथियों का एक दस्ता लेकर हुसैन खाँ बिहार से रवाना हुआ। सिकन्दर भी बनारस की ओर चला। यहाँ से वह हुसैन खाँ

पर आक्रमण करने के लिए बढ़ा। सिकन्दर हुसैन खाँ को एक दमनकारी पराजय देने में सफल हुआ और उसने एक लाख घुड़सवार सेना के साथ पटना की ओर बढ़कर उसका पीछा किया। यह जानकर कि हुसैन खाँ पटना से भाग रहा है, वह अपनी सारी सेना के साथ बिहार की ओर चल पड़ा। हुसैन खाँ लखनौती की ओर भाग निकला जहाँ उसने छिपे रहकर अपना सारा जीवन व्यतीत कर दिया। 1495 ई. में बिहार सरलता से खानखाना के हाथों में आ गया और इस प्रकार सारा देश सुल्तान के आधिपत्य में आ गया।

बंगाल से संधि (ज्तमंजल ूपजी ठमदहंस): बिहार पर आक्रमण ने बंगाल के चुस्त व लड़ाकू शासक अलाउद्दीन हुसैन शाह की शत्रुता को जाग्रत कर दिया। उसने अपने साथी के पीछा किए जाने तथा सीमाओं के उल्लंघन के विरुद्ध रोष प्रकट किया। बंगाल के शासक ने दिल्ली के सुल्तान के विरुद्ध स्वयं बढ़ने में संकोच समझा और उसने

यह कार्य अपने पुत्र को दिया। चरम सीमाओं तक बढ़ने में किसी भी पक्ष को कुछ न मिलना था और इसलिए एक संधि हो गई जिसमें तय किया गया कि कोई भी पक्ष दूसरे के प्रदेश पर आक्रमण न करेगा। बंगाल के शासक ने यह प्रतिज्ञा की कि वह सिकन्दर शाह के शत्रुओं की कोई सहायता न करेगा।

कुछ समय तक सिकन्दर शाह बिहार में रहा परन्तु उसकी सेना को अकाल का सामना करना पड़ा। यहाँ से वह जौनपुर पहुँचा जहाँ उसने शासन-प्रबन्ध का पुनर्गठन किया। जौनपुर में अपने विश्राम के समय कुछ सरदारों के व्यवहार ने सिकन्दर को रुष्ट कर दिया। एक सरदार ने पोलो खेलते समय दूसरे सरदार के सिर पर छड़ी मार दी और इससे अव्यवस्था फैल गई। यद्यपि दोनों पक्षों को अलग कर दिया गया, तथापि अगले दिन भी उनका संघर्ष चलता रहा और सुल्तान ने उनमें से एक को कोड़े से पीटे जाने की आज्ञा दी। अपने व्यक्तिगत बचाव के लिए सुल्तान को चैकन्ना रहना पड़ा। इस पर भी, उसे पद से हटाने व उसके भाई फतेह खाँ को सिंहासनारूढ़ किये जाने का षड्यन्त्र रचा गया। षड्यन्त्र खुल गया और इसलिए सुल्तान ने षड्यन्त्रकारियों को दरबार से निर्वासित कर दिया।

सरदारों के विरुद्ध कार्यवाही (Action against Nobles): सिकन्दर शाह ने अफगान सरदारों के विरुद्ध भी कार्रवाई की। उसने आदेश दिया कि कुछ अमीरों व सरदारों के हिसाब-किताब का परीक्षण किया जाये, हालांकि कुछ लोगों ने उसके आदेश का विरोध किया, किन्तु उसे अपने उद्देश्य में सफलता मिली। कई छोटे-मोटे विद्रोह भी हुए किन्तु उनका दमन कर दिया गया।

नोट

आगरा की स्थापना (Foundation of Agra)**:** आगरा नगर की नींव डालने का श्रेय सिकन्दर शाह को ही मिलता है। इस निर्णय का कारण यह था कि सुल्तान इटावा, बियाना, कोल, ग्वालियर तथा धौलपुर के जागीरदारों पर अधिक प्रभावशाली नियन्त्रण रखना चाहता था। 1504 ई. में आगरा नामक एक नए नगर की नींव पड़ी और बहुत ही जल्दी यहाँ पर एक बहुत सुन्दर नगर का निर्माण हो गया। सुल्तान ने भी अपना निवास स्थान दिल्ली से आगरा बदल लिया। 1505 ई. में एक भूकम्प आ गया। "वास्तव में यह इतना भयानक था कि पहाड़ तक उलट गए और बड़ी-बड़ी इमारतें जमीन पर गिर गईं, बचे हुए यह समझने लगे कि कयामत का दिन आ गया है और मरे हुए सोचने लगे कि मुक्ति का दिन आ गया है।" भूकम्प से प्रभावित होने वाला क्षेत्र बहुत विशाल था। वास्तव में, यह सामान्य रूप से सारे भारतवर्ष में घटित हुआ। बदायूनी हमें बताता है कि यह फारस तक फैला था। इससे जीवन व सम्पत्ति की बहुत हानि हुई।

नारवाड़ (Narwar)**:** 1508 ई. में सिकन्दर शाह नारवाड़ पर चढ़ाई करने के लिए बढ़ा, जो साधारणतया मालवा के राज्य में मिला हुआ था, परन्तु अब ग्वालियर के आधीन था। कुछ दिनों तक संघर्ष चलता रहा, परन्तु उसके बाद दुर्ग पर आक्रमण कर दिया गया। अकाल व जलाभाव के कारण उतगीर की सेना ने कुछ शर्तों पर अपना समर्पण कर दिया और सिकन्दर शाह ने दुर्ग में प्रवेश किया। उसने फिर सारे हिन्दू मन्दिरों को नष्ट कर दिया और उन स्थानों पर मस्जिदों के निर्माण का आदेश दिया।

चन्देरी (Chanderi)**:** चन्देरी का दुर्ग जीतने के बाद अफगान सरदारों को दे दिया गया। 1510 ई. में नासेर के प्रान्ताध्यक्ष मुहम्मद खाँ ने आधीनता स्वीकार की और सुल्तान के नाम का खुत्बा पढ़वाया। चन्देरी के राजकुमार ने सिकन्दर शाह को अपना स्वामी स्वीकार करने की इच्छा प्रकट की। राजकुमार को चन्देरी नगर पर नाममात्र अधिकार रखने की अनुमति मिल गई किन्तु उसका प्रबन्ध प्रमुख अफगान अधिकारियों को दे दिया गया।

नागौर के अली खाँ के दावे पर सिकन्दर शाह ने अन्तिम अभियान किया। अली खाँ एक धूर्त व्यक्ति था और उसने सिकन्दर के विरुद्ध प्रान्ताध्यक्ष से समर्पण न करने को कहा। परिणाम यह हुआ कि अली खाँ को अपनी जागीर से हाथ धोने पड़े। अंततः 21 नवम्बर, 1517 ई. को सिकन्दर शाह की मृत्यु हो गई।

आन्तरिक शासन-प्रबन्ध (Internal Administration)**:** यह सच है कि सिकन्दर शाह को अपना बहुत-सा समय युद्ध करने में व्यतीत करना पड़ा, परन्तु अपने शासन-प्रबन्ध की ओर दृष्टि डालने का भी उसे थोड़ा अवसर मिल गया। वह इस योग्य हो गया कि अनेक सरदारों की शक्ति को

कमजोर कर दी और इस प्रकार अपनी शक्ति बढ़ा ली। उसने अफगान अधिकारियों के हिसाब-किताब का परीक्षण करने का आदेश दिया हालांकि वह जानता था कि इससे वे अप्रसन्न हो जायेंगे। जब बंगाल के अभियान के बाद मुबारक खाँ लोदी के बही-खातों का परीक्षण किया गया, तो उसके प्रति कोई दया नहीं बरती गई। शेष धन उससे उसी समय वसूल किया गया। जासूसों की कुशल व्यवस्था की सहायता से सुल्तान देश के प्रत्येक कोने से सूचना पाने में समर्थ रहा। बड़े अमीरों के व्यक्तिगत परिचारकों को सुल्तान ने स्वयं नियुक्त किया। सुल्तान ने कृषि को प्रोत्साहन दिया और अनाज पर से महसूल हटा दिये। व्यापारियों व व्यवसाय करने वालों को शान्ति व सुरक्षा के साथ अपना काम करने की प्रत्येक सम्भव सहायता प्रदान की गई। सुल्तान के आदेशानुसार, प्रत्येक वर्ष निर्धन पुरुषों की सूचियाँ बनाई गईं और उन्हें 6 मास की रसद भी दी गई। वर्ष में कुछ दिनों के लिए बन्दी भी मुक्त किये जाते थे। सुल्तान पीड़ित मनुष्यों की प्रार्थनाओं व याचनाओं को स्वयं सुनता था और विवेक अनुसार अपना निर्णय देता था। सुल्तान की स्मरण शक्ति बहुत तेज थी और इसीलिए वह बहुत-सा लाभदायक ज्ञान एकत्रित कर सका था। उसने विद्वान मनुष्यों को सहायता दी और स्वयं फारसी भाषा में कविता की। उसी के संरक्षण के कारण मियाँ भुआ ने एक संस्कृत के औषधि शास्त्र का फारसी भाषा में अनुवाद किया जिसका नाम तिब्बी-ए-सिकन्दरी रखा गया। किसी की जागीर को बलपूर्वक नहीं लिया गया। स्थापित रीति का कभी उन्मूलन नहीं किया गया। तारीख-ए-दाऊदी का लेखक हमें बताता है, "प्रत्येक व्यवसाय अपना निश्चित समय रखता था और एक स्थापित रीति को कभी बदला नहीं जाता था। जब सुल्तान एक बार किसी विशेष खान या पान की स्वीकृति दे देता था, तो वह फिर उसको नहीं बदलता था। ग्रीष्म ऋतु में एक प्रसिद्ध मनुष्य जौनपुर से उसके दर्शन हेतु आया और उसकी प्यास व गरमी को देखते हुए उसे 6 घड़े शरबत उसके भोजन के साथ दिया गया, किन्तु जब वह शरद ऋतु में फिर आया तो उसे पीने के लिए 6 घड़े शरबत पुनः दिया गया। सुल्तान ने सरदारों व महानुभावों से सदा उसी प्रकार का व्यवहार किया जैसा उसने उनसे पहले दिन किया था।"

उसी लेखक के अनुसार, "सुल्तान को प्रतिदिन सब वस्तुओं के भावों तथा साम्राज्य के विभिन्न जिलों की घटनाओं की सूचना प्राप्त होती थी। यदि उसको कहीं थोड़ी भी त्रुटि दिखाई देती, तो वह तत्काल उसकी जाँच करवाता था। उसके शासन में व्यवसाय शान्तिपूर्वक, ईमानदारी तथा स्पष्टता के साथ चलते थे। साहित्य के अध्ययन को भी न भुलाया गया था। राज्य के कारखानों की ऐसी व्यवस्था की गई थी कि सब युवक, सामन्त एवं सैनिक उपयोगी कार्यों में व्यस्त रहते थे। सिकन्दर के सब

नोट

सामन्त एवं सैनिक सन्तुष्ट थे। उसके प्रत्येक सरदार को एक जिले का शासन सौंपा गया था और जनता की शुभेच्छाएँ एवं प्रेम प्राप्त करने के लिए वह विशेषतया इच्छुक था। अपने पदाधिकारियों एवं सैनिक दलों के लिए ही, उसने अपने समय के अन्य शासकों एवं सामन्तों से युद्ध और झगड़े न छेड़े और वैमनस्य एवं कलह का मार्ग बन्द कर दिया। वह अपने पिता से प्राप्त राज्य-सीमा में ही सन्तुष्ट रहा और अपना समस्त जीवन उसने अत्यन्त सुरक्षा एवं आनन्द में बिताया और बड़े-छोटे सबके मन जीत लिए।"

धार्मिक कट्टरपन (Religious Bigotry)**:** परन्तु सिकन्दर शाह के चरित्र पर एक धब्बा भी है जिसे ओझल नहीं किया जा सकता। सिकन्दर शाह एक अन्धविश्वासी मुस्लिम था और उसने अपनी हिन्दू प्रजा की भावनाओं को ठेस पहुंचाने का काफी कार्य किया। एक बार सिकन्दर शाह ने यह आदेश दिया कि मथुरा का मंदिर तोड़ दिया जाए और उसके स्थान पर सरायें व मस्जिदें बना दी जायें। मूर्तियाँ कसाइयों को दी गईं, जिन्होंने उनसे मांस तोलने का कार्य किया। उतगीर में हिन्दू मन्दिरों को नष्ट कर दिया गया और उस स्थान पर मस्जिदें बना दी गईं। 1505 ई. में मंडरेल के समर्पण के पश्चात् सिकन्दर शाह ने नगर के हिन्दू मन्दिर को नष्ट करा दिया और वहाँ पर मस्जिद बनवा दी। उसने दुर्ग के आस-पास के जिलों को भी लूटा और वहाँ संहार किया। बंगाल के एक ब्राह्मण ने सार्वजनिक रूप से यह कहा कि इस्लाम व हिन्दू धर्म दोनों सच्चे हैं व किसी को भी अपनाकर ईश्वर के पास पहुंचा जा सकता है। बिहार प्रान्ताध्यक्ष आजम-ए-हुमायूँ को आदेश दिया गया कि वह दरबार में उस ब्राह्मण को और इस्लाम के दो बड़े धर्माचार्यों को विवाद के लिए भेजे। राज्य के विभिन्न भागों से धर्म के विद्वानों को इस विषय पर विचार करने के लिए बुलाया गया कि शान्ति पर उपदेश देना अनुमति-योग्य है या नहीं। उनका निर्णय यह हुआ कि जब ब्राह्मण ने इस्लाम का यथार्थ स्वीकार कर लिया है तो उसे इस्लाम स्वीकार करने का आदेश मिलना चाहिए और यदि वह ऐसा करने से इन्कार कर दे तो उसे प्राणदण्ड मिलना चाहिए। सिकन्दर शाह ने यह निर्णय स्वीकार करते हुए ब्राह्मण को वही आदेश दिया और जब उसने इस्लाम धर्म स्वीकार करने से इन्कार कर दिया तो उसको मृत्युदण्ड दिया गया। सिकन्दर शाह ने नगरकोट के ज्वालामुखी पर्वत की पवित्र मूर्तियों को तोड़ दिया। हिन्दुओं को यमुना नदी के घाटों पर स्नान करना वर्जित कर दिया गया। इस्लाम के पुराने रिवाज के अनुसार नाइयों को यह आदेश हुआ कि वे हिन्दुओं के सिरों व दाढ़ी के बालों का मुँडन न करें। इन समस्त बातों ने हिन्दुओं के हृदय से लोदी वंश के लिए प्रेम निकाल दिया।

मूल्यांकन (Estimate)**:** सर वुल्जले हेग के मतानुसार, "वह अपने वंश के तीनों सुल्तानों में सबसे बड़ा था और उसने अपने पिता के छोड़े हुए अधूरे काम को बहुत सफलता के साथ पूरा किया। उसके शासन काल में हम पंजाब के विषय में बहुत कम सुनते हैं। अपने पूर्वी अभियानों में उसने पंजाब से कोई सैनिक सहायता न ली, परन्तु ऐसे संकेत मिलते हैं कि पंजाब उसके पिता के शासन काल की अपेक्षा उसके समय में अधिक शान्त व आज्ञापालक बना रहा। उसके प्रभावशाली शासन-प्रबन्ध ने प्रचुर रूप से उस अल्प संख्या की पसन्द को ठीक सिद्ध किया, जिसने घोर विरोध के होते हुए भी उसे सिंहासनारूढ़ कराया, उसके चुनाव ने उसके राज्य को अज्ञानी, विद्रोही और निष्ठुर अफगानों के हाथों में कठपुतली बनने से बचाया। अपने अत्यन्त अयोग्य भाई बारबक से सहायता लेना उसका सबसे कमजोर कार्य था परन्तु यह दोष उस चरित्र में जाकर छिप जाता है जिसमें बहुत से गुण भी निहित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उसे अपने भाई से सच्चा प्रेम था और उसे यह आभास था कि उसका भी अपना जन्मसिद्ध अधिकार है, इसलिए उसने उसे भी एक भाग दिया। किन्तु जब उसे पता चला कि यह कृपा उसके लिए एक गलत नीति सिद्ध हुई, तो यह भी जान लिया कि उसे क्या करना चाहिए।

"उसके चरित्र पर सबसे बड़ा धब्बा उसकी क्रूर धर्मान्धता है। उसकी विजयों के विवरण, निस्सन्देह जिसकी इतिहासकारों ने अतिशयोक्ति की है, उन आक्रमणों के समान हैं जो भारत पर मुस्लिम धर्म प्रचारकों ने किये थे। मन्दिरों का ऐसा बड़ा संहार विजित जिले के हिन्दुओं को दबाने के लिए कोई बुद्धिमतापूर्ण कार्य नहीं था और एक ब्राह्मण की हत्या; जिसका एकमात्र अपराध विजित व पराजित धर्मों के बीच समन्वय स्थापित करना था, कोई कूटनीतिक कार्य नहीं, किन्तु सिकन्दर के मस्तिष्क पर धर्माचार्यों से सम्बन्ध रखने वाले स्वभाव की जाली चढ़ी हुई थी।"

4.7 इब्राहीम लोदी (1517-26)

सिकन्दर शाह की मृत्यु के बाद उसका सबसे बड़ा पुत्र, इब्राहीम 21 नवम्बर 1517 ई. को गद्दी पर बैठा। इसमें उसे सारे अफगान सरदारों की निर्विरोध स्वीकृति मिली थी और उसने इब्राहीम शाह की उपाधि ग्रहण की।

राजकुमार जलाल के विरुद्ध कार्रवाई (Action against Prince Jalal)**:** कुछ ऐसे अफगान सरदार थे जो अपने स्वार्थी हितों के कारण राज्य का विभाजन चाहते थे। वे जलाल खाँ को, जो इब्राहीम का छोटा भाई था, जौनपुर ले गये और वहाँ उसे गद्दी पर बिठा दिया। रापरी के प्रांताध्यक्ष

नोट

खान जहाँ लोहानी ने राज्य में फूट डालने वाली इस नीति की निन्दा की। फल यह हुआ कि अफगान सरदारों ने अपनी गलती मान ली और उन्होंने हैबत खाँ, 'बाघ मारक', को इसलिए भेजा कि वह जौनपुर में जलाल खाँ को अपदस्थ होने को फुसलाए। लेकिन जलाल खाँ ने अपना पद छोड़ने से इन्कार कर दिया। तब इब्राहीम ने एक फरमान द्वारा आदेश दिया कि अमीर लोग जलाल की आज्ञा न मानें और उन्हें आज्ञोल्लंघन की दशा में सजा देने की धमकी भी दी। जलाल खाँ ने सरदारों से मिलकर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। आजम हुमायूँ ने भी उसे अपना सहयोग दिया क्योंकि उसे इब्राहीम से व्यक्तिगत रोष था। अपने सब भाइयों को हाँसी के दुर्ग में बन्दी करके इब्राहीम जलाल खाँ के विरुद्ध बढ़ा। कालपी को घेर लिया गया और उसका दुर्ग तोड़ दिया गया। जलाल खाँ आगरा की ओर भागा जहां प्रांताध्यक्ष ने उससे बातचीत की। जब इब्राहीम को इन बातों का पता चला, तो उसने उन्हें अस्वीकार कर दिया और जलाल खाँ की मृत्यु का आदेश जारी कर दिया। जलाल खाँ ने भागकर ग्वालियर के राजा के पास शरण ली। जब ग्वालियर का दुर्ग जीत लिया गया, तो वह मालवा की ओर भाग गया, परन्तु गोंडवाना के जमींदारों ने उसे पकड़ कर इब्राहीम के सुपुर्द कर दिया। जब वह हाँसी लाया जा रहा था, तो उसकी सुल्तान के आदेशानुसार मार्ग में ही हत्या कर दी गई।

आजम हुमायूँ के विरुद्ध कार्रवाई (Action against Azam Humayun)**:** केवल सन्देह पर इब्राहीम शाह ने ग्वालियर से आजम शाह को बुलाया और उसे व उसके पुत्र फतेह खाँ को बन्दीगृह में डाल दिया। आजम हुमायूँ के एक अन्य पुत्र इस्लाम खाँ को कारा-मानिकपुर की प्रांताध्यक्षता से वंचित कर दिया गया। आजम हुमायूँ के विरुद्ध होने वाली कार्रवाई के फलस्वरूप अत्यन्त रोष उत्पन्न हो गया। विद्रोहियों ने 40,000 अश्वारोहियों, 500 हाथियों और बहुत-सी पैदल सेना की विशाल सहायता के आधार पर माँग की कि आजम हुमायूँ को छोड़ दिया जाये। एक पवित्र सन्त शेख राजू बुखारी ने दोनों पक्षों के बीच समझौता कराने की चेष्टा की, किन्तु उसके सारे प्रयास निष्फल रहे। इब्राहीम ने विद्रोहियों की माँग अस्वीकार कर दी। इस पर घोर संग्राम चल पड़ा और रक्तपात हुआ। मखजन-ए-अफगाना के लेखक के वर्णनानुसार, "लाशों के ढेर-पर-ढेर से रणभूमि पट गई; भूमि पर पड़े हुए कटे सिरों का अनुमान लगाना सामर्थ्य से बाहर हो गया। मैदान में खून की नदियाँ बह चलीं और हिन्दुस्तान में जब कभी कोई युद्ध कुछ समय तक चलता रहता, तो बूढ़े लोग कहा करते कि इस युद्ध की समानता किसी युद्ध से नहीं की जा सकती। पारस्परिक लज्जा छोड़ एवं स्वभावगत वीरता से उत्तेजित होकर भाई-भाई के विरुद्ध, पिता-पुत्र के विरुद्ध लड़ रहा था; धनुष-बाण एक ओर रख दिए गए थे और कुल्हाड़ियों, तलवारों, छुरियों तथा गदाओं से संहार

किया जा रहा था।" आखिर इस्लाम खाँ खेत रहा; सईद खाँ पकड़ा गया और विद्रोहियों को भारी क्षति के साथ परास्त किया गया।

नोट

राणा सांगा से संग्राम (War with Rana Sanga)**:** हमें इब्राहीम व मेवाड़ के राणा सांगा के बीच युद्ध का विवरण मिलता है। यह कहा जाता है कि इब्राहीम ने मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए एक विशाल सेना का संगठन किया व उसे बड़े योग्य व अनुभवी सेनानियों के अधीन रखा। शुरू में मियाँ हुसैन राणा साँगा की ओर जा मिला, परन्तु उसने संकट के समय में धोखे से उसका साथ छोड़ दिया। अफगान सिपाही राजपूतों पर टूट पड़े तथा उनकी

एक बड़ी संख्या को कत्ल कर दिया गया। राणा सांगा बचकर भाग गया किन्तु उसके साथियों को पकड़कर मौत के घाट उतार दिया गया। यह विषय स्मरणीय है कि सिवाय तारीख-ए-सलातीन-ए-अफगाना, वाकयात-ए-मुश्ताकी व तारीख-ए-दाऊदी के अन्य कोई विश्वसनीय स्रोत इस युद्ध की चर्चा नहीं करते। इस विषय पर निजामुद्दीन बदायूनी व फरिश्ता भी मौन हैं। राजपूत विवरणों में भी इसकी चर्चा नहीं मिलती। टॉड (ज्वक) के कथनानुसार, "सांगा ने अपनी सेनाएँ संगठित कीं जिनके बल पर वह सदा रणक्षेत्र में विजयी रहा और तैमूर के वंशज से संग्राम करने तक उसने दिल्ली व मालवा के शासकों के विरुद्ध 18 संग्रामों में विजय प्राप्त की। इनमें से दो ऐसे हुए जिनमें उसका मुकाबला स्वयं इब्राहीम लोदी से बकरोल व घटोली पर हुआ; अन्तिम संग्राम में शाही सेनाओं को पराजय मिली, जिसका हत्याकाण्ड किया गया और शाही वंश के एक मनुष्य को चित्तौड़ विजय के प्रमाण स्वरूप बन्दी कर लिया गया।" ऐसी प्रतीत होता है कि राणा सांगा पर इब्राहीम लोदी की विजय दिखाने वाला अहमद यादगार का विवरण ठीक नहीं है।

सरदार (Nobles): इब्राहीम अपने सरदारों को कुचल कर अपनी सत्ता दृढ़ करना चाहता था और उसने उन्हें विनम्र रखने में यथासम्भव प्रयत्न किया। उसने अपने पिता के एक प्रमुख सरदार मियाँ भुआ को कैद कर लिया। उसका अपराध केवल यह था कि वह शाही शिष्टाचार के प्रति उदासीन रहता था व सर्वदा वही कार्य करता था जो उसके स्वामी को सब से अधिक हितकर सिद्ध हो और ऐसा करने में वह औपचारिक रीतियों के अनुसार उसकी अनुमति भी नहीं लेता था। वृद्ध मनुष्य की बन्दीगृह में मृत्यु हो गई और इसने उसके पुत्र की वफादारी का लोप कर दिया हालांकि उसके साथ उदार व्यवहार किया गया। आजम हुमायूँ को धोखे से बन्दीगृह में वध कर दिया गया। सुल्तान के आदेशानुसार जलाल खाँ की हत्या पहले ही की जा चुकी थी जबकि उसे बन्दी बनाने के लिए हांरी के दुर्ग ले जाया जा रहा था। बड़े-से-बड़े सरदार तक अपनी रक्षा के लिए भयभीत

नोट

होने लगे। अत: दरिया खाँ, खान-ए-जहाँ लोदी व हुसैन खाँ फरमूली ने सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। चंदेरी के किसी फकीर ने हुसैन खाँ फरमूली को सोते हुए मार दिया। दरिया खाँ ने मुहम्मद के पुत्र बहादुर शाह की उपाधि धारण कर ली व इब्राहीम की सत्ता की अवहेलना की। पंजाब के प्रांताध्यक्ष दौलत खाँ के पुत्र दिलावर खाँ के साथ इब्राहीम ने क्रूरता का व्यवहार किया। जब दौलत खाँ लोदी को इब्राहीम की राजधानी में बुलाया गया तो उसने इस आधार पर क्षमा माँग ली कि बाद में वह एक कोष के साथ अयेगा और उसने अपने पुत्र दिलावर खाँ को तुरन्त भेज दिया। दिल्ली में दिलावर खाँ को इब्राहीम ने बन्दीगृह में डाल दिया और वहाँ दीवारों से टंगे हुए शाही बन्दी दिखलाए और भय से काँपते हुए इस अफगान युवक को सम्बोधित करते हुए सुल्तान ने कहा, "देख ली तुमने मेरी आज्ञा की अवहेलना करने वालों की दशा?" यह बताया जाता है कि इब्राहीम के सामने दिलावर खाँ ने अपना सिर झुका दिया, परन्तु किसी प्रकार से निकल कर भाग गया और उसने पिता को राजधानी में देखे गए अनुभवों को वृतान्त सुनाया। इन्हीं परिस्थितियों में दौलत खाँ लोदी ने बाबर को भारत पर चढ़ाई करने का निमन्त्रण भेजा।

इस विषय पर विभिन्न विद्वानों में मतभेद है। मखजन में बताया गया है कि दौलत खाँ ने पंजाब के अन्य अमीरों व गाजी खाँ के साथ एक संधि की और आलम खाँ द्वारा निमन्त्रण बाबर के पास भेजा गया। फरिश्ता का यह कहना है कि अपने परिवार के लिए कोई बचाव न पाकर दौलत खाँ लोदी ने विद्रोह किया व बाबर से भारत पर आक्रमण करने की प्रार्थना की। बाबर के आक्रमण से पूर्व इब्राहीम का भाई या चाचा आलम खाँ इब्राहीम लोदी के पास से भाग गया था और वह काबुल में निवास कर रहा था। अहमद यादगार का दृष्टिकोण यह है कि भारत पर आक्रमण करने के लिए बाबर के पास दिलावर खाँ को भेजा गया था। तारीख-ए-खाने जहाँ लोदी का रचयिता यह बताता है कि आलम खाँ द्वारा निमंत्रण काबुल पहुंचा था। वह दिल्ली की ओर बढ़ा परन्तु इब्राहीम लोदी ने उसे हरा दिया, परन्तु 1526 ई. में पानीपत की लड़ाई में स्वयं परास्त हुआ।

ऐसा पता चलता है कि दौलत खाँ का सच्चा ध्येय बाबर को इस प्रकार प्रयोग करना था जिससे पंजाब में वह अपनी सत्ता कायम रख सके। आलम खाँ को दिल्ली की गद्दी मिलनी थी और दौलत खाँ को पंजाब पर अधिकार। यह भी कहा जाता है कि 1524 ई. में बाबर ने पंजाब पर आक्रमण किया और सरलता से लाहौर पर कब्जा कर लिया। बाबर ने सुल्तानपुर व जालंधर की जागीरें दौलत खाँ को दे दीं, परन्तु जब दौलत खाँ ने सद्व्यवहार नहीं किया, तो वे उससे ले ली गईं और उसके पुत्र दिलावर खाँ को दे दी गईं। पंजाब के शासन-प्रबन्ध की समस्या ठीक करके बाबर

काबुल वापस चला गया। ज्योंही बाबर रवाना हुआ, दौलत खाँ ने सुल्तानपुर की जागीर अपने पुत्र से ले ली और दीपालपुर से अपने पुत्र को निकाल दिया। आलम खाँ काबुल पहुँचा व वहाँ उसने बाबर से शिकायत की। इन परिस्थितयों ने बाबर को पुनः लौटने व भारत पर आक्रमण करने पर विवश किया। 1526 ई. की पानीपत की लड़ाई में इब्राहीम लोदी मारा गया और बाबर को विजय प्राप्त हुई। बाबर की सफलता का कारण "नेता की कुशलता व अश्वारोही सेना तथा तोपखाने का वैज्ञानिक मिश्रण" था। इस प्रकार, पानीपत के युद्ध ने लोदी वंश का अन्त कर दिया और मुगलों के शासन के द्वार खोल दिए।

नोट

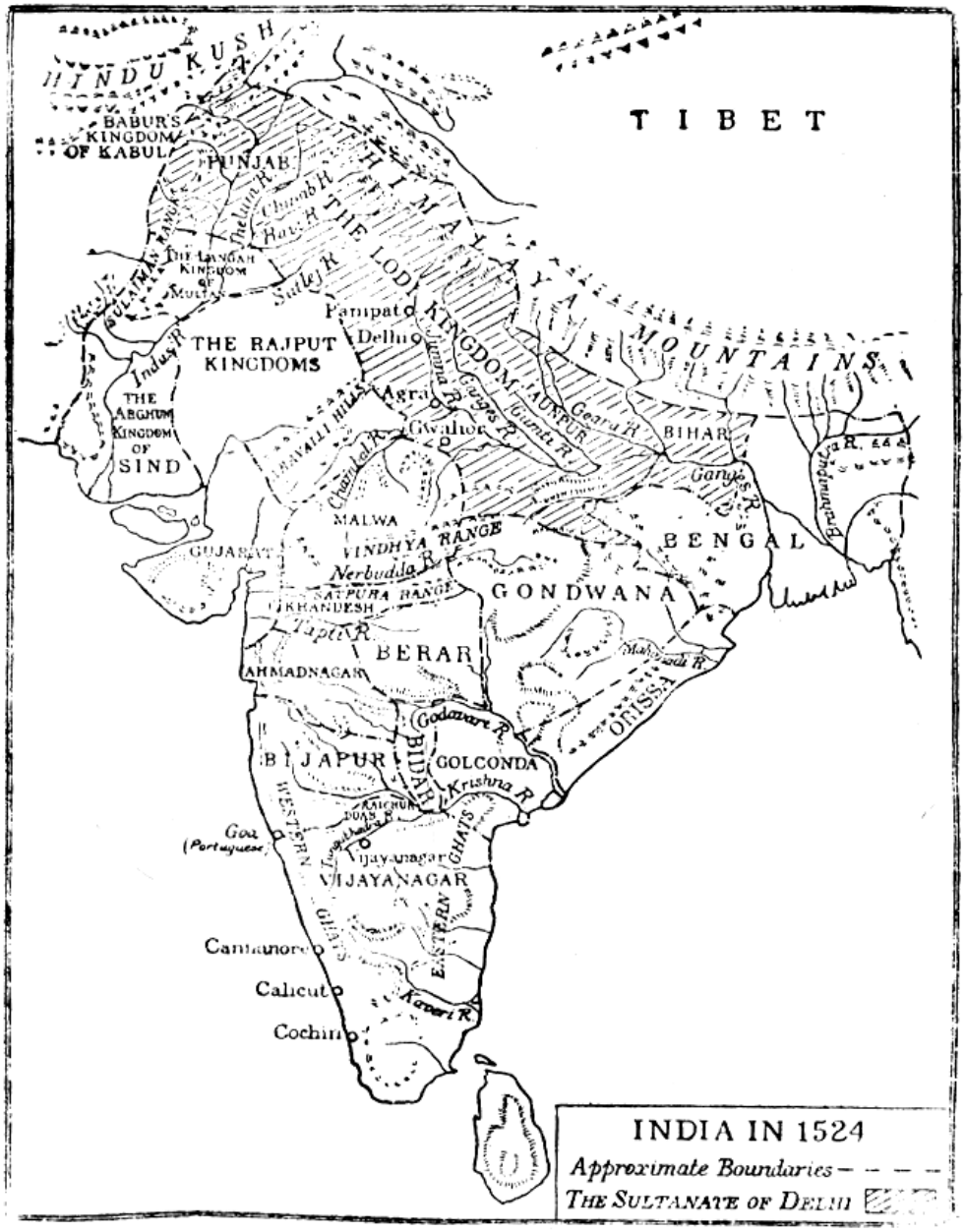

4.8 सारांश

नोट

बहलोल लोदी, लोदी वंश का संस्थापक था जो 1451 से 1526 ई. तक रहा। वह लोदी जाति के साहू खैल वर्ग से था। बहलोल का दादा मलिक बहराम फिरोज तुगलक के शासन काल में मुल्तान चला गया था। उसने वहाँ के प्रांताध्यक्ष मलिक मरदान दौलत के यहाँ सेवा स्वीकार कर ली थी। मलिक बहराम के पाँच पुत्र थे किन्तु उनमें से केवल दो (मलिक सुल्तान शाह और मलिक काला) प्रसिद्ध हुए।

यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि दिल्ली की गद्दी पर बहलोल को बिठाने में हामिद खाँ का भी हाथ था। यह भी सच है कि बहलोल ने हामिद खाँ से सुल्तान बनने को कहा क्योंकि वह केवल इतने से संतुष्ट न हुआ कि हामिद खाँ सेनाओं का निदेशकर्ता मात्र या उसके आदेशों के पालनकर्ता की भाँति रहे। बहलोल ने उसके प्रति अगाध सम्मान प्रदर्शित भी किया। यद्यपि बहलोल सिंहासनारूढ़ हो चुका था, तथापि जौनपुर के शासक महमूद शाह शर्की ने उसे हटाने का प्रयत्न किया। महमूद शाह दिल्ली की ओर बढ़ा और उस ने बहलोल के बड़े पुत्र ख्वाजा बयाजिद को घेर लिया जो उस समय दिल्ली का कार्य संभाल रहा था। महमूद शाह दिल्ली की ओर बढ़ते हुए लगभग 30 मील के निकट पहुंचा जबकि बहलोल उसकी रक्षा करने में सफल हुआ।

बहलोल केवल लोदी वंश का संस्थापक ही नहीं था, वरन् इस वंश की शक्ति व वैभव का सारा उत्तरदायित्व भी उसी पर था। वह उन विभिन्न सरदारों को दबाने में सफल हुआ, जिन्होंने केन्द्रीय शक्ति का उल्लंघन किया था। वह साम्राज्य की शक्ति को दृढ़ नींव पर रखने में भी सफल रहा। उसकी सबसे बड़ी सफलता जौनपुर को अपने साम्राज्य में फिर से मिलाना है, जो बहुत वर्षों से उसकी सत्ता का विरोध कर रहा था। बहलोल लोदी के बाद उसका पुत्र निजाम खाँ सिकन्दर शाह की उपाधि ग्रहण करके सिंहासनारूढ़ हुआ। सिकन्दर शाह को अपना सुल्तान मानने में अमीरों व सरदारों को कुछ संकोच था, क्योंकि उसकी माता किसी स्वर्णकार की पुत्री थी और इसलिए उसका पुत्र एक राजकुमार की अपेक्षा साधारण व्यक्ति था। परन्तु यह संकोच हट गया और वह सिंहासन पर बैठा। सिकन्दर शाह एक कट्टर मुसलमान था और सिंहासन के लिए उसका चुनाव कदाचित् इसी कारण किया गया होगा।

सिकन्दर शाह की मृत्यु के बाद उसका सबसे बड़ा पुत्र, इब्राहीम 21 नवम्बर 1517 ई. को गद्दी पर बैठा। इसमें उसे सारे अफगान सरदारों की निर्विरोध स्वीकृति मिली थी और उसने इब्राहीम शाह की उपाधि ग्रहण की। कुछ ऐसे अफगान सरदार थे जो अपने स्वार्थी हितों के कारण राज्य

का विभाजन चाहते थे। वे जलाल खाँ को, जो इब्राहीम का छोटा भाई था, जौनपुर ले गये और वहाँ उसे गद्दी पर बिठा दिया।

4.9 शब्दकोश

- **दशाः** स्थिति
- **कार्रवाईः** कार्यों का विवरण

4.10 अभ्यास प्रश्न

1. लोदी वंश का संस्थापक कौन था? उसके प्रारंभिक जीवन का वर्णन करें।
2. सिकन्दर शाह कौन था? उसकी कार्रवाइयों का वर्णन करें।
3. इब्राहीम लोदी कौन था? उसका राणा सांगा से संग्राम का वर्णन करें।
4. पानीपत की पहली लड़ाई कब और किसके बीच हुई थी?

4.11 संदर्भ पुस्तकें

- मध्यकालीन भारत (दिल्ली सल्तनत)– रहीससिंह, पियर्सन ऐजुकेशन इंडिया।
- लेटर मिडाईवल इंडिया, ए हिस्ट्री ऑफ दी मुगल्स– अवध बिहारी पांडे, सेन्ट्रल बुक डिपो।
- मध्यकालीन भारत का इतिहास– पार्थिव कुमार, रीतु पब्लिकेशन्स।
- मध्यकालीन भारत का इतिहास : सल्तनत काल– मोहित, राजीव कुमार, रजत प्रकाशन।
- मध्यकालीन भारत का इतिहास– शैलेन्द्र शैन्गर, अटलांटिक पब्लिशर्स।